Con. 4. VIII.3.49
250

अंक 8
संख्या 3

बुधवार
18 मई
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारत शासन अधिनियम (संशोधन) विधेयक..... 129-136
संविधान सभा के नियमों में नियम 38-ए (3)
और 61-ए का जोड़ना..... 136-142
संविधान का मसौदा (जारी)..... 142-196
[नया अनुच्छेद 67-ए, अनुच्छेद 68, 68-ए, 69
नया अनुच्छेद 69-ए, अनुच्छेद 70, 71 और 72 पर विचार]

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 18 मई सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में प्रातः 8 बजे समवेत हुई।

भारत शासन (संशोधन) विधेयक

***अध्यक्षः** कार्यावली में पहली मद एक विधेयक है जिसकी सूचना माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने दी थी। अस्वस्थ होने के कारण सरदार वल्लभभाई पटेल को यहां से जाना पड़ गया और उन्होंने मुझसे कहा कि माननीय श्री गाडगिल को इस विधेयक के सम्भालने की अनुमति दे दी जाये। श्री गाडगिल।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं की भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये एक विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है

> ''कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये विधेयक को उपस्थित करने की अनुमति दी जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

माननीय श्री एन.वी. गाडगिलः श्रीमान्, मैं विधेयक उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** विधेयक उपस्थित हो गया।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिलः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये प्रस्तुत विधेयक पर सभा तुरन्त विचार करे।''

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय श्री एन.वी. गाडगिल]

इस विधेयक का उद्देश्य भारत-शासन-अधिनियम में दो प्रावधानों के विषय में संशोधन करना है। पहला प्रावधान धारा 97 है जिसके अन्तर्गत कुर्ग विधान-परिषद (Legislative Council) के निर्माण, शक्तियों और प्रकार्यों में तथा कुर्ग के राजस्व तथा व्यय संबंधी व्यवस्था में परिवर्तन केवल संविधान-सभा (Constituent Assembly) के कानून द्वारा ही किया जा सकता है। जब प्रांतीय विधान-मंडलों में यूरोपिनी का प्रतिनिधित्व समाप्त हुआ था, तब यह बात भूल से रह गई थी कि कुर्ग में प्रतिनिधित्व फिर भी जारी रहेगा। इस समय कुर्ग विधान-परिषद् में दो यूरोपीन हैं और यह अनुचित समझा जाता है कि यह असंगत बात रहने दी जाये। साथ ही, इस अभिप्राय विशेष से संविधान-सभा में कोई विधेयक रखना अनावश्यक है। अन्यथा भी, कुर्ग के विद्यमान संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति गवर्नर-जनरल को देना अधिक सुविधाजनक होगा। संशोधन विधेयक के उपबन्ध से सरकार को अधिकार मिल जायेगा कि वह आदेश द्वारा ऐसा कर सके।

दूसरा उपबन्ध संधानीय और समवर्त्ती विधायिनी सूचियों में कुछ परिवर्तन करने के विषय में है। प्रथम सूची की मद एक के अनुसार केन्द्र को रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध का अधिकार है; किन्तु वास्तव में नजरबन्दों के विषय में कुछ भी करने की कार्यपालिका शक्ति प्रांतों के पास रहती है, क्योंकि ''औपनिवेशिक प्राधिकारी के अधीन निवारक अवरोध के नजरबन्द'' यह समवर्त्ती सूची की 34वीं मद है। दूसरी ओर, प्रांतीय विधायिनी सूची को मद 1 से प्रांतों को सार्वजनिक व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से निवारक अवरोध और ऐसे अवरोध के नजरबन्दों दोनों के विषय में शक्ति मिलती है। कोई कारण नहीं है कि अपने-अपने नजरबन्दों के विषय में केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों की शक्तियों में अन्तर रखा जाये। अत: इस विधेयक में यह प्रावधान है कि केन्द्रीय प्राधिकारी के अधीन अवरोध पर केन्द्र का ही कार्यपालक नियंत्रण रहे। यह संधानीय विधायिनी सूची की प्रथम कंडिका में समुचित संशोधन करके किया गया है।

हमें नजरबन्दों के अन्तर-प्रांतीय स्थानान्तरण में भी काफी कठिनाई अनुभव हो रही है। नजरबन्द पूर्णत: प्रांतीय नियंत्रण में होते हैं अत: उन्हें उसी प्रांत विशेष में रखना पड़ता है। अब तक, जब भी अत्यन्त आवश्यकता के मामले में ऐसा अवसर आया है तो 1818 के बंगाल आनियम तृतीय के उपबन्धों का प्रयोग किया गया है। स्पष्टत: यह असंतोषजनक प्रणाली है। स्थानान्तरण की आवश्यकता किसी प्रांत विशेष मैं स्थानाभाव के कारण अथवा नजरबन्द की ही अपने प्रांत में जाने की इच्छा के कारण अथवा प्रांतीय सरकार के लिये अन्य प्रांत में भेजना प्रशासनीय दृष्टि से सुविधाजनक हो, तब उत्पन्न होती है। दो अर्वाचीन

मामलों में हमें 1818 के तृतीय आनियम का प्रयोग करना पड़ा था। पश्चिमी बंगाल के कुछ पंजाबी नजरबन्दों की ओर से भी पूर्वी पंजाब में स्थानान्तरित होने की मांग की गई थी। इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इस समय प्रांतों को कोई शक्ति नहीं है कि वे अपने नजरबन्दों को स्थानान्तरित कर सकें। अतः समवर्त्ती सूची में सुझायें गये सुझाव से यह कठिनाई हल हो जायेगी क्योंकि इससे केन्द्र को यह अधिकार मिल जायेगा कि वह ऐसे स्थानान्तरण के लिये विधि बना सके और अपेक्षित कार्यवाही प्रांतों पर छोड़ दी जाये।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री अनन्तशयनम् के नाम में इस प्रस्ताव पर एक संशोधन की सूचना मिली है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं कोई संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं किन्तु मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** पंडित ठाकुरदास भार्गव ने भी उसी संशोधन की सूचना दी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं उसे उपस्थित नहीं करता, श्रीमान्।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, इस विधेयक के दो भाग हैं, एक कुर्ग के विषय में है। भारत-शासन-अधिनियम की धारा 97 के अन्तर्गत कुर्ग की विधान-परिषद् उसके राजस्व तथा व्यय सम्बन्धी विद्यमान आनियम तब तक लागू रहेंगे जब तक कि संविधान-सभा (Constituent Assembly) तत्सम विधि तथा आनियम बनाकर उनमें परिवर्तन न कर दे, यह शक्ति संविधान-सभा को स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 8 के अधीन दी गई है। प्रस्तावित संशोधन यह है कि 'संविधान-सभा' के स्थान पर 'गवर्नर-जनरल का आदेश' ये शब्द रख दिये जायें। मेरी अपनी भावना तो यह है कि गवर्नर-जनरल चाहे कितना भी प्रतिष्ठावान हो, फिर भी वह कार्यपालिका का प्रतिनिधि है और यह शक्ति कार्यपालिका को देना और संविधान सभा से ले लेना उपयुक्त नहीं है। यह कहा जाता है कि संविधान-सभा की शक्ति तो बनी ही रहेगी। शायद ऐसा हो, किन्तु जब संविधान-सभा को धारा 97 के अधीन दी गई शक्तियां इस संशोधन द्वारा उस धारा में से निकाल दी जायेंगी, तो यह काम बहुत चक्कर से करना होगा। यह मेरी पहली आपत्ति है। किन्तु हम दो मास में ही संविधान पारित करने वाले हैं और तीन मास की कालावधि के लिये गवर्नर-जनरल को यह शक्ति देने में कोई हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यह केवल कार्य साधना का प्रश्न है और यदि कुर्ग विधान-परिषद् में यूरोपियनों की उपस्थिति की असंगति को हटाना तथा ऐसी त्रुटियों का तत्काल सुधार करना ही अपेक्षित समझा जाता है, तो

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

भारत-शासन-अधिनियम के संशोधन की लम्बी कार्यप्रणाली से अच्छा साधन गवर्नर-जनरल का परिषद् आदेश ही है। नि:संदेह इस दृष्टिकोण से यह संशोधन स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु यह इस सामान्य सिद्धांत के विरुद्ध है, कि कार्यपालिका को विधान-मंडल के कार्य में हस्तक्षेप अथवा उस पर नियंत्रण नहीं करना चाहिये और विधान-मंडल के विधान में हस्तक्षेप करने की शक्ति केवल सर्वोच्च सर्वसत्ता प्राप्त विधान-मंडल में ही निहित होनी चाहिये।

संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध समवर्त्ती सूची से संधानीय सूची में मदों को स्थानान्तरित करने की शक्ति देने से है। आज संधानीय सूची की मद 1, 'रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रविष्ट राज्यों से संबंधित विषयों के प्रयोजनार्थ अवरोध' केवल संधानीय सूची में ही है। जहां तक प्रांतों का सम्बन्ध है सुरक्षात्मक प्रयोजनों के लिये अवरोधित व्यक्तियों के मामलों में व्यक्ति को नजरबन्द करने की शक्ति केवल प्रांत में निहित है। इस विधेयक का उद्देश्य रक्षा तथा विदेशी मामलों के सम्बन्ध में अवरोधित व्यक्तियों की नजरबन्दी के प्रावधानों को सुरक्षा के प्रयोजनार्थ प्रांतीय सरकारों द्वारा अवरोधित व्यक्तियों के प्रावधानों के बराबर लाना है। किन्तु इस संशोधन की उपयुक्तता अथवा वांछनीयता में मुझे तो संदेह है। मैं यह बात निम्न कारणों से कहता हूं। केन्द्र के पास कोई विशेष कारागृह नहीं है जिनका वह प्रबन्ध करता हो। जिसे भी नजरबन्द किया जाये, चाहे केन्द्र करे अथवा प्रांत, उस व्यक्ति को प्रांतीय सरकार के आदेश से ही प्रांतीय कारागृह में नजरबन्द करना होता है। ऐसे संकटकाल में, जबकि किसी कारागृह विशेष में हैजा या प्लेग हो जाये, तो प्रांतीय सरकार के लिये यह सुगम नहीं होगा कि वह केन्द्र से पत्र व्यवहार करे, उनसे निर्देश मांगे और आदेशों की प्रतीक्षा करे कि किसी बन्दी को उस प्रांत के एक कारागृह से उसी भाग अथवा प्रांत के दूसरे कारागृह में भेज दिया जाये अथवा नहीं। यह कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। अत: भारत-शासन-अधिनियम, 1935 में और अनुकूलन किये गये और लागू रखे गये रूप में भारत-शासन-अधिनियम में भी, और इस परिषद् के समक्ष पेश किये गये संविधान के मसौदे में, जिस पर हम इस समय विचार कर रहे हैं, ऐसे प्रावधान रखना उपयुक्त समझा गया कि औपनिवेशिक सरकार के आदेश से अवरोधित व्यक्तियों को केवल संधानीय विषय न बनाकर समवर्त्ती विषय बनाया जाये। मैं नहीं समझता कि इस अधिकार को अथवा इस प्रविष्टि को समवर्त्ती सूची में से संधानीय सूची में बदलना और केवल संधानीय सरकार को यह क्षेत्राधिकार देना कहां तक बुद्धिमत्ता है। किन्तु मैं इस बात पर बल नहीं दे रहा हूं। जब हम संविधान पर विचार करें और जब हम इस प्रविष्टि पर विचार करें तब इस मामले पर फिर विचार कर सकते हैं। यह विधेयक केवल

एक अस्थायी चीज है और मैं इसे स्वीकार करता हूं क्योंकि यह सदन के समक्ष रखा गया है, यद्यपि मुझे संदेह है कि यह संशोधन, जो कि इस विधेयक द्वारा किया जा रहा है, बिल्कुल उपयुक्त या आवश्यक नहीं है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, यद्यपि यह विधेयक निर्दोष तथा सीधा दिखाई देता है, तदपि मेरे तुच्छ मतानुसार यह विधेयक इस सभा में पारित होने योग्य नहीं है। पहली बात जो विचारार्थ प्रस्तुत होती है वह यह है कि उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्यानुसार खंड 2 का एकमात्र उद्देश्य यह है कि कुर्ग में यूरोपीय प्रतिनिधित्व हटाना है। किन्तु खंड 3 से स्पष्ट है कि यह प्रयोजन सीधे उपाय द्वारा सिद्ध नहीं होता। मैं तो बल्कि यह चाहता हूं कि यह विधेयक केवल इसी उद्देश्य के लिये होता। किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस समय जिस चीज की आवश्यकता है उससे कहीं अधिक बात इस विधेयक में रख दी गई है और विधि-निर्माण का यह सिद्धांत है कि एक परिस्थिति विशेष के उपचारार्थ ही विधेयक रखना चाहिये और वह अत्यन्त विस्तृत नहीं होना चाहिये। श्रीमान्, यह विधेयक अत्यधिक विस्तृत है।

इस विधेयक पर मुझे दूसरी आपत्ति यह है कि इसमें संविधान-सभा की शक्ति के स्थान पर गवर्नर-जनरल को शक्ति देने का प्रयास किया गया है। यदि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि अनुसार यह शक्तियां संविधान सभा को दी हैं तो, यह तर्कसंगत दिखाई नहीं देता कि यह शक्तियां केवल कार्यपालिका के हाथ में ही दे दी जायें।

खंड 4 के विषय में भी मुझे संदेह है। इस समय प्रथम सूची में ये शब्द हैं–

> ''रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध।''

द्वितीय सूची में, खंड इस प्रकार है—

> ''सार्वजनिक व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से निवारक अवरोध; ऐसे अवरोध के अधीन व्यक्ति।''

तृतीय सूची-समवर्ती सूची में ये शब्द हैं—

> ''बन्दियों तथा अभियुक्त व्यक्तियों का एक भाग से दूसरे भाग में हटाना।''

किन्तु तृतीय सूची के खंड 34 में, ये शब्द हैं—

> ''संघ के प्राधिकार के अधीन निवारक अवरोध में नजरबन्द किये गये व्यक्ति।''

यदि यह विधेयक उस दोष तक ही सीमित होता जिसका कि उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य के अनुसार उपचार करना है तो कोई व्यक्ति इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता था। उस वक्तव्य में, हम देखते हैं कि नजरबन्दों के स्थानान्तरण में कठिनाई होने

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

के कारण यह विधेयक सभा के समक्ष रखा जा रहा है, किन्तु इस विधेयक का वास्तविक प्रयोजन उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य में नहीं दिया गया है। वास्तविक उद्देश्य यह दिखाई देता है कि जो लोग रक्षा, विदेशी मामलों अथवा भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों से सम्बद्ध राज्य-कारणों से निवारक अवरोध में लिये गये हैं उनके विषय में प्रांतीय सरकारों की शक्तियां छीन ली जायें। जब इस प्रकार का विधेयक पेश किया जाये तो यह अच्छा हो यदि वास्तविक प्रयोजन का स्पष्टत: उल्लेख कर दिया जाये। वास्तविक प्रयोजन उद्देश्यों तथा कारणों के वक्तव्य में उल्लिखित प्रयोजन से भिन्न है। प्रांतीय सरकार पर कुछ अविश्वास सा प्रतीत होता है। उनकी शक्तियों को छीन लेने का प्रयास किया जा रहा है। मैं तो बल्कि यह चाहता हूं कि औपनिवेशिक सरकार की विद्यमान शक्तियों तथा प्रांतीय सरकार की शक्तियों दोनों का विस्तार कर दिया जाता। मैं तो यह समझता हूं कि प्रांतीय सरकारों को भी उन व्यक्तियों के विषय में शक्ति होनी चाहिये, जो रक्षा, विदेशी मामलों आदि के राज्य-कारणों से निवारक अवरोध में हैं और औपनिवेशिक सरकार को उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में शक्ति दी जानी चाहिये जो सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखने के सम्बन्ध में निवारक अवरोध में रखे गये हैं, क्योंकि औपनिवेशिक सरकार के पास तो अपने कारागृह हैं ही नहीं। उसके सारे नजरबन्द प्रांतीय सरकारों के कारागृह में रखे जाते हैं और यदि प्रांतीय सरकार पर अविश्वास किया जाये, तो औपनिवेशिक सरकार उनके कारागृहों में जिन व्यक्तियों को भेजे, उनके विषय में वे सरकारें जो चाहें कर सकती हैं।

इस पर मेरी आपत्ति यह है कि केन्द्रीय सरकार के नजरबन्दों और प्रांतीय सरकार के नजरबन्दों में कोई विभेद नहीं किया जाना चाहिये। मुझे स्मरण है कि 1942 में, जब कुछ नजरबन्द दिल्ली से लाहौर भेजे गये तो उनसे मिलने तथा अन्य मामलों में नियम सर्वथा भिन्न थे। दिल्ली के नजरबन्दों के साथ पंजाब सरकार के नजरबंदों की तुलना में भिन्न प्रकार का बर्ताव किया जाता था। मैं इस विभेद को पसंद नहीं करता और मैं चाहता हूं कि सब नजरबन्दों पर समान नियम लागू होने चाहियें चाहे उनके अवरोध के कारण कुछ भी हों। आखिर, जब तक न्यायालय में पेश न किया जाये नजरबन्द व्यक्ति कानून की दृष्टि में तो सर्वथा निर्दोष है, चाहे कुछ भी कारण हो। अत: नजरबन्दों के साथ समान व्यवहार होना चाहिये, चाहे वे प्रांतीय सरकार के हों अथवा औपनिवेशिक सरकार के हों। यदि यह प्रावधान न रखा जाये तो औपनिवेशिक सरकार के नजरबन्दों तथा प्रांतीय सरकारों के नजरबन्दों में विभेद होने की सम्भावना है।

इसके अतिरिक्त मैं कंडिका (बी) की आवश्यकता को नहीं समझता।

इसमें लिखा है:

> ''बंदियों, अभियुक्तों तथा सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित कारणों से निवारक अवरोध में नजरबन्दों का एक भाग से दूसरे भाग में स्थानान्तरण।''

सूची संख्या 1 की कंडिका 1 के अनुसार शांति व्यवस्था के बनाये रखने से सम्बद्ध कारणों से नजरबन्द व्यक्तियों के विषय में औपनिवेशिक सरकार को कोई शक्ति नहीं है। अत: मैं यह नहीं समझ सकता कि उनके स्थानान्तरण के विषय में यह शक्ति औपनिवेशिक सरकार को कैसे दी जा सकती है, जबकि मूलत: उसे उनको संरक्षण में रखने का अधिकार नहीं है। अत: यह तर्क के अनुसार अपेक्षित है कि आप ऐसे नजरबन्दों के सम्बन्ध में औपनिवेशिक सरकार को शक्ति दें। इसके अतिरिक्त, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों में सम्बन्ध में अथवा विशेष परिस्थितियों में, हो सकता है कि केन्द्रीय सरकार को इन शक्तियों की आवश्यकता हो। मैं जानता हूं कि यह केवल दो मासों के लिये अस्थायी उपाय है अतएव मेरे विचार में हमें संशोधन पेश करके सभा का समय नहीं लेना चाहिये। साथ ही मैं चाहता हूं कि संविधान बनाते समय हमें इन त्रुटियों से बचना चाहिये। यदि इस विधेयक का सिद्धांत नये संविधान में भी रख दिया जाये तो मुझे इसका विरोध करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। मेरी सभा से प्रार्थना है कि इस मामले का निश्चय करते समय इन सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिये।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल:** श्रीमान्, यह वास्तव में बहुत सीधी सी चीज है और इस पर इतना वाद-विवाद उचित नहीं है। इसमें इतनी बातें हैं: दो एक तो अधिनियम के प्रशासन में कुछ असंगतियों का दूर करना है और उसके लिये धारा 97 की कार्य-प्रणाली कुछ जटिल है अत: एक अधिक सरल कार्यप्रणाली का सुझाव रखा गया है। दूसरी बात उन व्यक्त्यिों को एक प्रांत से दूसरे में स्थानान्तरित करने की कठिनाई है जो कि केन्द्रीय सरकार के बन्दी हैं। उपयुक्त प्रावधान करके इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया गया है। कोई बड़ा सिद्धांत इसमें नहीं है और यदि सिद्धांत का प्रश्न हो भी तो बहुत अल्पकाल के लिये है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने के लिये प्रस्तुत विधेयक पर सभा तुरन्त विचार करे।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

खंड 1 से 4 तक विधेयक में जोड़ दिये गये।

शीर्षक और प्रस्तावना विधेयक में जोड़ दिये गये।

***माननीय श्री एन.वी. गाडगिल:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि:

> ''भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने वाला विधेयक सभा द्वारा निश्चित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।''

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

''कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 में और अधिक संशोधन करने वाला विधेयक सभा द्वारा निश्चित रूप में स्वीकार कर लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान-सभा के नियमों में नियम 38-ए (3) और 61-ए का जोड़ना

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करती हूं:

''(i) That the following amendment to the Constituent Assembly Rules be taken into consideration:

After sub-rule (2) of rule 38-A, the following sub-rule be added:

'(3) In this rule, the reference to the Government of India Act, 1935, includes reference to any enactment amending or supplementing that Act, and, in particular, reference to the India (Central Government and Legislature) Act, 1946.'

"(ii) That the provision mentioned in the Constituent Assembly Notification No. CA/76/Com/RR/48, dated the 2nd August, 1948, be made part of the Constituent Assembly Rules, as shown in the amendment below, with effect from 8.5.1948—

In Chapter X of the said rules, after rule 61 the following rule be added:

'Execution of orders as to costs—61-A. Any order made by the President under rule 61 as to costs may, except where such costs are wholly payable out of the sum deposited as security under rule 54, be produced before the principal Civil Court of original jurisdiction within the local limits of whose jurisdiction any person directed by such order to pay any sum of money has a place of residence or business, or, where such place is within the local limits of the ordinary origional civil jurisdiction of a High Court, before the Court of Small

Causes having jurisdiction there, and such Court shall execute such order or cause it to be executed in the same manner and by the same procedure as if it were a decree for the payment of money made by itself in a suit.' ''

[(1) कि संविधान-सभा के नियमों में निम्न संशोधनों का विचार किया जाये:

नियम 38-ए के उपनियम (2) के पश्चात् निम्न उपनियम जोड़ दिया जाये:

''(3) इस नियम में, भारत-शासन-अधिनियम 1935, के प्रसंग में उस अधिनियम का संशोधन अथवा अनुपूरण करने वाले किसी अधिनियम और विशेषतया भारत (केन्द्रीय-शासन और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 का प्रसंग भी समाविष्ट है।''

(2) कि संविधान-सभा की विज्ञप्ति संख्या सी.ए./76/काम/आर.आर./48, दिनांक 2 अगस्त, 1948, को 8.5.1948 से संविधान-सभा के नियमों का अंग बना दिया जाये, जैसे कि निम्न संशोधन में दिखाया गया है:

कथित नियमों के अध्याय दशम में, नियम 61 के पश्चात् निम्न नियम जोड़ दिया जाये—

''**व्यय सम्बन्धी आदेशों का कार्यान्वित होना**—61-ए व्यय के संबंध में नियम 61 के अधीन अध्यक्ष का कोई आदेश, सिवाय उस अवस्था के जबकि ऐसा व्यय नियम 54 के अधीन जमा की हुई रकम में से पूर्णत: दिया जाना हो, मौलिक क्षेत्राधिकार के उस मुख्य न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है, जिसके मौलिक अधिकार की स्थानीय सीमाओं में वह व्यक्ति रहता हो अथवा व्यापार करता हो, जिसे उस आदेश द्वारा कोई रकम जमा कराने का निर्देश दिया गया है अथवा जहां ऐसा स्थान किसी उच्च न्यायालय के साधारण मौलिक व्यवहार क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर हो, वहां उस स्थान पर क्षेत्राधिकार वाले लघुवाद न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है और ऐसा न्यायालय उस आदेश को ऐसे प्रकार और ऐसी प्रणाली से क्रियान्वित करेगा, जैसे कि वह आदेश रकम की अदायगी के विषय में हो और किसी मुकदमे में उसी ने दिया हो।'']

श्रीमान्, ये प्रस्ताव अविवादास्पद हैं और इन पर लम्बी व्याख्या अपेक्षित नहीं है। किन्तु मैं अनुभव करती हूं कि मेरा यह कर्त्तव्य है कि इन संशोधनों की आवश्यकता के विषय

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

में कुछ व्याख्यात्मक शब्द कहूं। पहले प्रस्ताव के विषय में प्रस्तावित संशोधन का उद्देश्य यह है कि संविधान-सभा के नियम 38-ए का उप नियम (1), जैसा यह इस समय है, संविधान-सभा को अधिकार देता है कि वह भारतीय स्वातंत्र्य अधिनियम अथवा उसके अंतर्गत दिये गये किसी आदेश, अथवा बनाये गये किसी नियम, आनियम अथवा अन्य दस्तावेजों में अथवा अनुकूल दिये गये रूप में भारत-शासन-अधिनियम 1935 में संशोधन कर सकती है। किन्तु कुछ अन्य संसदीय विधान भी हैं जो भारत-शासन-अधिनियम का अनुपूरण अथवा संशोधन करते हैं, उदाहरणार्थ भारत (केन्द्रीय सरकार और विधान-मंडल) अधिनियम, 1946 है; और यह संदेहास्पद है कि क्या उस उपनियम में भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के प्रसंग में ऐसे विधानों का भी प्रसंग समाविष्ट है। अत: ऐसा समझा जा सकता है कि हमारे नियमों में ऐसे विधेयकों के लिये कोई प्रावधान नहीं किया गया है जिनका उद्देश्य ऐसे विधानों में संशोधन करना हो। नियम 38-ए के उपनियम (3) द्वारा, जो अब प्रस्तावित है, इस भूल को सुधारने का प्रयास किया गया है।

यह केवल यह औपचारिक प्रावधान है अतएव इस पर अधिक विस्तृत विवरण की आवश्यकता नहीं है।

दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि इस संशोधन की आवश्यकता इस प्रकार उत्पन्न हुई कि संविधान-सभा के नियमों में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसमें निर्वाचन विषयक व्यय को उस अवस्था में वसूल करने की प्रणाली उल्लिखित हो जबकि वह व्यय जमानत की रकम में से वसूल न किया जा सकता हो। अब तक इस प्रकार के मामलों में भारतीय निर्वाचन तथा जांच अधिनियम, 1920 की धारा 12 का प्रयोग होता था, जिसमें यह व्यवस्था थी कि किसी विधान-मंडल की सभा के निर्वाचन के संबंध में जांच करने के लिये नियुक्त कमिश्नरों की रिपोर्ट पर केन्द्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों द्वारा दिये गये व्यय संबंधी आदेश को क्रियान्वित किया जा सकता है। किन्तु एक कठिनाई थी कि उक्त अधिनियम केवल प्रांतों में ही लागू किया गया था, किसी देशी राज्य में नहीं। अत: धारा 12 की कार्यप्रणाली उन मामलों पर लागू नहीं होती थी जिनमें प्रतिवादी किसी देशी राज्य का प्रजाजन हो। अत: माननीय अध्यक्ष ने इस प्रकार का प्रावधान करना आवश्यक समझा और अब इसे संविधान-सभा के नियमों में रखा जाना है जैसे कि पहले प्रकाशित की गई विज्ञप्ति में इंगित था।

इस संशोधन के दो प्रभाव हैं: क्योंकि संविधान-सभा सर्वसत्ताधारी निकाय है, अत: यह प्रावधान समस्त भारत के प्रदेशों में लागू होगा और यह भी बात है कि उसका वही प्रभाव होगा जोकि विधान-मंडल द्वारा पारित किसी कानून का होता है। यह समस्त न्यायालयों

को भी मानना होगा, चाहे वे किसी प्रांत में हों अथवा किसी देशी राज्य में हों। श्रीमान्, मैंने इस प्रस्ताव में जो संशोधन रखे हैं उनका यही उद्देश्य है और यही उनके प्रभाव होंगे। श्रीमान्, मैं अपने प्रस्ताव को पेश करती हूं और परिषद से अनुरोध करती हूं कि इसे स्वीकार कर ले।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, प्रस्तावित नये नियम 61-ए के जोड़ने के विषय में मैं कुछ कठिनाई का अनुभव करता हूं। मुझे नियम के सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं है। वरन् मैं यह मानता हूं कि कुछ ऐसा प्रावधान अपेक्षित है। मुझे तो यह कठिनाई है कि यह किस स्थान पर रखा जाना चाहिये और इसका क्या रूप होना चाहिये। यह नियम व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता के संशोधन के रूप में है। अध्यक्ष व्यय देने का आदेश दे सकता है; और इस नियम में ऐसी व्यवस्था करने का प्रस्ताव है जिससे व्यय वसूल किया जो सके। इसमें कहा गया कि निर्वाचन सम्बन्धी व्यय उस रकम में से वसूल किया जाना चाहिये जो जमा की गई है और जिस हद तक व्यय उस जमा कराई हुई रकम में से वसूल न हो, वह रकम उस आदेश को समुचित न्यायालय के समक्ष पेश करके वसूल की जा सकती है जैसे कि यह धनराशि के लिये डिग्री हो। मेरा निवेदन है कि यह तो वास्तव में व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता में संशोधन करने का प्रयास है इसमें प्रावधान है कि अध्यक्ष के आदेश को क्रियान्वित किया जाये, जो कि उस संहिता में प्रावहित नहीं है और इस नियम का व्यावहारिक प्रभाव उस संहिता का संशोधन होगा। किन्तु मुझे इस प्रकार के नियम के औचित्य में संदेह है।

मैं तो सभा से इस प्रश्न पर विचार करने के लिये कहना चाहता हूं कि क्या इस सभा की कार्यप्रणाली के नियमों में संशोधन करने का यह प्रभाव होगा कि अध्यक्ष द्वारा दिये गये व्यय संबंधी आदेशों को क्रियान्वित करने का क्षेत्राधिकार वास्तव में न्यायालयों में निहित हो जाये। व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता को तो केवल संशोधन-अधिनियम द्वारा ही बदला जा सकता है। हम इस सभा में पहले ही यह निर्णय कर चुके हैं कि यह सभा दो भिन्न-भिन्न रूपों में समवेत होगी—एक तो संविधान निर्मातृ सभा के रूप में जैसे कि यह अब यह है दूसरे कानून निर्मातृ सभा के रूप में दूसरे सदन में। हमने यह भी निश्चय किया है कि इस सभा में भारत-शासन-अधिनियम तथा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम का संशोधन किया जा सकता है और हमने अभी इस सभा में भारत-शासन-अधिनियम, 1935 में संशोधन करने के लिये एक विधेयक पारित किया है। व्यवहार कार्यप्रणाली संहिता के प्रस्तावित संशोधन के विषय में समुचित कार्यप्रणाली यह है कि एक विधेयक द्वारा उस संहिता में वास्तविक सीधा संशोधन किया जाये और यदि यह उपाय वांछनीय समझा जाये तो उसका समुचित स्थान यह सभा विधायिनी सभा के रूप में है जहां उचित विधेयक पेश हो सकता है। यदि इसे इतना आवश्यक समझा जाये कि यह प्रावधान तत्काल ही कानून-ग्रंथ में होना ही चाहिये, तो गवर्नर-जनरल से कहा जाये कि वे एक अध्यादेश जारी

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

कर दें और उचित समय में इस अध्यादेश के स्थान पर एक स्थायी कानून बनाकर व्यवहार-कार्यप्रणाली संहिता में उचित संशोधन कर दिया जाये। जैसा कि मैंने निवेदन किया है, कठिनाई यह है कि क्या हमारे कार्यप्रणाली नियमों के संशोधन से न्यायालयों को वास्तव में अपेक्षित प्राप्त हो जायेगा। सक्षम प्राधिकारी इस स्थिति को स्पष्ट करें।

इसके अतिरिक्त कई गम्भीर प्रकार की वाक्य-रचना संबंधी त्रुटियां है जिनके कारण यह नियम, बंधनकारी हो भी, तब भी कई मामलों में प्रभावपूर्ण हो जायेगा। यह प्रावधान किया गया है यदि उस स्थान पर, जहां वह व्यक्ति रहता हो जिससे रुपया वसूल करने का आदेश दिया गया है, कोई उच्च न्यायालय न हो तो उस क्षेत्र में मौलिक न्यायाधिकार वाला उच्चतम न्यायालय उस व्यय संबंधी आदेश को क्रियान्वित करेगा, अर्थात् जिला न्यायाधीश का न्यायालय उस आदेश को क्रियान्वित करेगा। जो व्यक्ति उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में रहते हैं, उनके विषय में वेलघुवाद न्यायालय उस आदेश को क्रियान्वित करेंगे जिनका वहां क्षेत्राधिकार है। यहां कुछ गड़बड़ है। दो प्रकार के उच्च न्यायालय होते हैं—एक तो प्रेसीडेन्सी के नगरों में स्थित न्यायालय और कुछ वे जो अन्य स्थानों पर स्थित हैं। नये उपनियम को बताते समय इस मूलभूत अन्तर की उपेक्षा कर दी गई है। प्रेसीडेन्सी नगरों—बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता—में प्रेसीडेंसी खफीफा न्यायालय हैं और उन उच्च न्यायालयों के मौलिक क्षेत्राधिकार में रहने वाले व्यक्तियों के विषय में तो कोई कठिनाई नहीं होगी और वहां लघुवाद न्यायालय व्यय-संबंधी आदेशों को क्रियान्वित कर देंगे। किन्तु अन्य उच्च न्यायालय हैं जो प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं है जैसे युक्तप्रांत में इलाहाबाद, मध्यप्रांत में नागपुर, बिहार में पटना, पूर्वी पंजाब में शिमला और आसाम में शिलांग, जहां कि प्रेसीडेंसी लघुवाद कानून लागू नहीं है और जहां कोई प्रेसीडेंसी खफीफा न्यायालय नहीं हैं वहां वही जिला न्यायाधीश के व्यवहार न्यायालय हैं, किन्तु लघुवाद न्यायालय नहीं है जैसे कि प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित उच्च न्यायालयों के मौलिक क्षेत्राधिकार में हैं। प्रेसीडेंसी लघुवाद न्यायालय अधिनियम (1882 के अधिनियम 15) की धारा 5 में प्रावहित है कि कलकत्ता, मद्रास और बम्बई इनमें से प्रत्येक नगर में एक लघुवाद न्यायालय होगा। अन्य नगरों में जहां कि उच्च न्यायालय हैं, कोई लघुवाद न्यायालय नहीं होगा। अतः जो उच्च न्यायालय प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं है उनके संबंध में कोई लघुवाद न्यायालय नहीं होगा जो इन आदेशों को क्रियान्वित कर सके।

इन उच्च न्यायालयों में, जो प्रेसीडेंसी नगरों में स्थित नहीं हैं, ऐसे लघुवाद न्यायालय नहीं हैं। प्रेसीडेंसी नगरों के विषय में लघुवाद न्यायालयों के वैत्तिक क्षेत्राधिकार की भी

कुछ सीमा होती है। हो सकता है कि व्यय का आदेश ऐसी रकम के लिये हो जो कि प्रेसीडेंसी नगर के इन न्यायालयों के वैत्तिक क्षेत्राधिकार से अधिक हो। यही कठिनाइयां हैं जो मेरे ध्यान में आती हैं और इन्हीं कारणों से मैंने इसे निकाल देने का एक प्रस्ताव भेजा था जिसे इस आधार पर कि वह नियमों के विरुद्ध उचित प्रकारेण रद्द कर दिया गया। किन्तु मैं इस कठिनाइयों को बता देना चाहता हूं और स्पष्टीकरण मांगता हूं और चाहता हूं कि यदि ऐसा अपेक्षित हो तो इस नियम को अभी रहने दिया जाये और परम श्रेष्ठ गवर्नर-जनरल से एक अध्यादेश जारी करने के लिये कहा जाये और तत्पश्चात् समुचित सदन में एक अधिनियम पारित कर दिया जाये। यह कार्यप्रणाली संबंधी कठिनाइयां हैं जिन पर इस नियम की भाषा निश्चित करते समय स्पष्टत: विचार नहीं किया गया। यह मामले हैं जिन पर परिषद् के सक्षम वकीलों द्वारा विचार करना और कोई हल ढूंढना अपेक्षित है। मैं तो केवल यही निवेदन करना चाहता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई:** श्रीमान्, मि. नजीरुद्दीन अहमद ने जो कठिनाई बताई है वह तो जरा भी गम्भीर कठिनाई नहीं है। मैं यह व्याख्या कर दूं कि हमारा विधान-मंडल कोई ऐसा प्रावधान नहीं बना सकता जो समस्त देशी राज्यों पर लागू हो सके। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह बात पक्की करना है कि वह आदेश सारे न्यायालयों पर बंधनकारी हो और देशी राज्यों में भी लागू हो, यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, यदि यह संशोधन न किया जाये। वास्तव में विधान-मंडल कोई ऐसा प्रावधान बनाने के लिये सक्षम नहीं है, जो समस्त देशी राज्यों में लागू हो सके। केवल यही सर्वसत्ताधारी निकाय उस नियम में संशोधन कर सकता है। भारतीय संविधान-सभा के नियमों में पहले भी एक प्रावधान, नियम 52 है, जिसमें कहा गया है कि कोई न्यायालय किसी निर्वाचन पर आपत्ति नहीं कर सकता। इससे न्यायालयों का क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया। अत: यह संशोधन करना पूर्णत: इस सभा की क्षमता में है। मैं नहीं समझती कि मि. नजीरुद्दीन अहमद को जिस कठिनाई की आशंका है उससे कोई भी रोड़ा अटकेगा। मुझे आशा है कि मेरी इस व्याख्या से वे संतुष्ट होंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं दोनों प्रस्तावित संशोधनों पर अलग-अलग मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

> ''(1) नियम 38-ए के उपनियम (2) के पश्चात् निम्न उपनियम जोड़ दिया जाये:
>
> '(3) इस नियम में, भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के प्रसंग में उस अधिनियम का संशोधन अथवा अनुपूरण करने वाले किसी अधिनियम और विशेषतया भारत केन्द्रीय शासन और विधान-मंडल अधिनियम, 1946 का प्रसंग भी समाविष्ट है।' ''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''(2) कि विधान-परिषद् की विज्ञप्ति संख्या सी.ए./76/काम./आर.आर./48, दिनांक 2 अगस्त 1948 को 8.5.1948 से संविधान-सभा के नियमों का अंग बना दिया जाये, जैसे कि निम्न संशाधन में दिखाया गया है: कथित नियमों के अध्याय 10 में नियम 61 के पश्चात् निम्न नियम जोड़ दिया जाये:

व्यय संबंधी आदेशों का कार्यान्वित होना—61-ए व्यय के संबंध में नियम 61 के अधीन अध्यक्ष का कोई आदेश, सिवाय उस अवस्था के जबकि ऐसा व्यय नियम 54 के अधीन जमा की हुई रकम में से पूर्णत: दिया जाना हो, मौलिक क्षेत्राधिकार के उस मुख्य न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है जिसके मौलिक अधिकार की स्थानीय सीमाओं में वह व्यक्ति रहता हो, अथवा व्यापार करता हो, जिसे उस आदेश द्वारा कोई रकम जमा करने का निर्देश दिया गया है अथवा जहां ऐसा स्थान किसी उच्च न्यायालय के साधारण मौलिक व्यवहार क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर हो, वहां उस स्थान पर क्षेत्राधिकार वाले लघुवाद न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जा सकता है और ऐसा न्यायालय उस आदेश का ऐसे प्रकार और ऐसी प्रणाली से क्रियान्वित करेगा, जैसे कि वह आदेश रकम की अदायगी के विषय में हो और किसी मुकदमे में उसी ने दिया हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संविधान का मसौदा—*जारी*

***अध्यक्ष:** अब हम भारत के संविधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करेंगे।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): सभापति जी, इसके पहले कि आप संविधान की धाराओं को लेवें मैं आपके सामने एक विषय पेश करना चाहता हूं, क्योंकि यह अधिवेशन हमारी संविधान सभा का आखिरी अधिवेशन है। आपने 2 मई सन् 1947 को इसी धारा सभा में यह घोषणा की थी कि:

''मैं सोच रहा था कि हम संविधान का मसविदा तैयार होने पर जितनी जल्दी हो सके, उसका अनुवाद करा लें और अन्त में उसे अपने मौलिक विधान के रूप में पास करें। यदि कहीं भावार्थ लगाने में कोई अस्पष्टता या कठिनाई पेश आई तो अंग्रेजी प्रति भी हवाले के लिये सामने रहेगी, पर मैं व्यक्तिगत रूप में यह चाहता हूं कि संविधान मौलिक रूप में हमारी मुख्य भाषा में हो, अंग्रेजी में नहीं, जिससे हमारे भावी न्यायाधीश अपनी भाषा पर निर्भर हो सकें, विदेशी भाषा पर नहीं।''

इसके बाद मैंने अभी सभी अहिंदी भाषा-भाषी प्रांतों का दौरा किया। मैं बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, आसाम, बंगाल, उड़ीसा, केरल, आंध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, मैसूर, ट्रावनकोर, हैदराबाद गया। सब जगह लोग मुझे एक ही राय के मिले कि हमारा मूल संविधान हमारी राष्ट्र-भाषा में होना चाहिये। हिंदी भाषा-भाषियों का तो मत हम जानते ही हैं। आपने अभी इस संबंध में जो कमेटी बनाई है, उस कमेटी के विषय में भी मुझे मालूम है कि जितनी धारायें हम यहां पास कर चुके हैं, उनका अनुवाद हिंदी में हो चुका है।

मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि आगे कोई दिक्कत न हो, इसलिये यह मुनासिब होगा कि अंग्रेजी धाराओं के साथ-साथ हम अपनी राष्ट्र-भाषा की धाराओं को भी लेते जायें, जिसमें कि हमारा संविधान राष्ट्र-भाषा में भी बन जाये और आपके कथनानुसार ही वह मूल हो, मुख्य हो। यह प्रश्न हमें इसी समय तय कर लेना चाहिये नहीं तो हम आगे चलकर बहुत दिक्कत में पड़ेंगे। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस संबंध में कुछ न कुछ निर्णय हो जाना जरूरी है।

***अध्यक्षः** यह सत्य है कि वाद-विवाद में एक बार मैंने यह वक्तव्य दिया था जिसकी चर्चा की गई है। उसी के अनुसार मैंने मसौदे का अनुवाद तैयार करने के लिये, जो मूलरूप में अंग्रेजी भाषा में बनाया गया था, समितियां नियुक्त की थीं। कुछ सज्जनों ने तीन अनुवाद तैयार किये थे, एक हिंदी में, एक जिसे हिंदुस्तानी कहा जाता है उसमें और तीसरा जिसे उर्दू कहा जाता है उसमें। यह तीनों अनुवाद मुद्रित कर दिये गये थे और मुझे विश्वास है कि सदस्यों को प्रतियां भेज दी गई। किंतु मैं समझता हूं कि इनमें से कोई भी मसौदा बहुत से सदस्यों को स्वीकार्य नहीं था और स्टीयरिंग समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके मुझे कहा कि मैं एक और अनुवाद तैयार करने के लिये, जो यथासम्भव शुद्ध हो किंतु साथ ही जनसाधारण की समझ में भी आ जाये, एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त करूं। मैंने वह समिति नियुक्त कर दी और वह समिति इस समय अपना कार्य कर रही है। मुझे विश्वास नहीं है कि उस समिति ने उन अनुच्छेदों का भी, जो अब तक इस सभा में स्वीकृत था पारित हो चुके हैं, अंतिम रूप में अनुवाद पूरा कर लिया है। उस दिन मैं उस समिति की एक बैठक में था और मैंने देखा कि ऐसे एक अनुच्छेद पर वाद-विवाद कर रहे थे जो कुछ पहले आता है। तब से कुछ प्रगति अवश्य हुई होगी किंतु मुझे पूरा पता नहीं है कि वे अब तक कितना आगे पहुंचे हैं। मैं तो अब भी अपने मत पर दृढ़ हूं—मुझे पता नहीं कि इस सभा के समस्त सदस्य मुझसे सहमत हैं या नहीं—किंतु मैं अब भी अपने मत पर दृढ़ हूं कि यदि हम अपने संविधान को मौलिक रूप में अपनी ही भाषा में पारित करें तो यह हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्मान के अनुकूल होगा, *(करतल ध्वनि)* किंतु मैं देखता हूं कि यह कठिनाई इन सब मासों में हमारे समक्ष रही है और मैं केवल आशा मात्र कर सकता हूं कि अब जो समिति नियुक्त की गई है वह हमें एक संतोषजनक अनुवाद ठीक समय पर दे सकेगी जिससे उसे इस सभा में पेश करके

[अध्यक्ष]

पास करवाया जा सके। आज मैं यह बात नहीं कह सकता, किंतु ज्योंही मुझे वह अनुवाद प्राप्त होगा मैं उस मामले को सभा के समक्ष रखूंगा।

***श्री एम. थिरूमाला राव** (मद्रास : जनरल): मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्, हिंदी में संतोषजनक अनुवाद उपलब्ध हो जाने की स्थिति में क्या यह विचार है कि इस संविधान को अंग्रेजी में स्वीकार करने की बात रहने दी जायेगी।

***अध्यक्ष:** मैं ऐसा नहीं समझता, क्योंकि मूल मसौदा अंग्रेजी भाषा में तैयार हुआ है और इसे स्वीकार करना है, किंतु यदि अनुवाद संतोषजनक हो जाये तो हम संविधान को अपनी भाषा में भी स्वीकार कर सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि यदि ऐसा हो भी, तो इस पर समुचित वाद-विवाद किया जायेगा, क्योंकि शायद हममें से कई सदस्य उस हिन्दी अनुवाद पर संशोधनों के सुझाव पेश करे।

***अध्यक्ष:** हां, सभा के प्रत्येक सदस्य को अधिकार होगा कि वह अनुवाद पर संशोधन पेश करे, जहां तक उसकी भाषा का संबंध है, किंतु उसके तत्व पर नहीं कर सकते, क्योंकि तत्व अंग्रेजी भाषा में स्वीकृत हो चुकेगा।

अब हम संविधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करेंगे। सभा ने अनुच्छेद 67 पर विचार किया है। अब हम आगे चलेंगे। स्टीयरिंग समिति का मत था कि हम निर्वाचन सम्बन्धी अनुच्छेदों को पहले स्वीकार कर लें। मैं समझता हूं कि यही सभा की भी इच्छा है। किंतु मुझे पता लगा है कि उन अनुच्छेदों को आज लेना सम्भव न होगा और हम उन्हें कल ले सकते हैं। आज हम अनुच्छेद 68 से आरंभ करेंगे और निर्वाचन संबंधी केवल ऐसे अनुच्छेदों को लेंगे जो आज के वाद-विवाद में आते हों और जो बाद में आयेंगे उन्हें कल लेंगे।

एक अनुच्छेद है जिसकी सूचना संशोधन के रूप में दी गई है, वह है 67-ए। पहले इसे लिया जायेगा।

नया अनुच्छेद 67-ए

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 67 के पश्चात्, निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:
>
> '67:A. (1) The President may nominate persons not exceeding three in number to assist and advise the Houses of Parliament in connection

with any particular Bill introduced or to be introduced in either House of Parliament.

(2) Every person so nominated in connection with any particular Bill shall, in relation to the said Bill, have the right to speak in, and otherwise to take part in the proceedings of either House and any joint sitting of the Houses of Parliament and any Committee of Parliament of which he may be named a member, but shall not, by virtue of such nomination, he entiteled to vote nor shall he be entitled to speak in or otherwise to take part in the proceedings of either House or any joint sitting of the Houses or any Committee of Parliament in relation to any other matter.' ''

[67-ए (1) संसद के किसी सदन में पेश किये गये अथवा किये जाने वाले किसी विशेष विधेयक के संबंध में संसद के सदनों की सहायता करने अथवा उन्हें मंत्रणा देने के लिये राष्ट्रपति तीन से अनधिक व्यक्ति मनोनीत कर सकता है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को, जो इस प्रकार किसी विधेयक के संबंध में मनोनीत किया जाये, उस विधेयक के संबंध में, किसी सदन में और संसद के सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में जिसका सदस्य उसे बना दिया जाये बोलने का तथा कार्यवाही अन्यथा में भाग लेने का अधिकार होगा, किन्तु ऐसे मनोनयन के कारण उसे किसी सदन में अथवा संसद के सदनों की किसी संयुक्त बैठक में अथवा संसद की किसी समिति में किसी अन्य विषय के संबंध में बोलने का अथवा कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार नहीं होगा।]

श्रीमान्, इस अनुच्छेद को संविधान में रखने की आवश्यकता यह है: सभा को स्मरण होगा कि द्वितीय सभा के निर्माण की चर्चा पहले संघीय संविधान समिति की रिपोर्ट की कंडिका 14 में की गई थी।

उस कंडिका में कहा गया था कि मसौदा-समिति को आयर की व्यवस्था को नमूने के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये जिसके अनुसार द्वितीय सदन के 15 सदस्यों को विज्ञान, साहित्य, कृषि, यंत्रकला आदि विभिन्न हितों द्वारा निर्मित तालिका में से मनोनीत किया जायेगा। जब मसौदा-समिति ने इस पर विचार किया, तब तक श्रीमान्, बी.एन. राव, जो भ्रमणार्थ गये थे, श्री डी.एल. वलेरा और आयर सरकार के अन्य सदस्यों से बात कर चुके थे कि आयरलैंड में प्रचलित यह व्यवस्था किस हद तक सफल हुई है और उन्हें

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बताया गया कि तालिका प्रणाली पूर्णत: असफल रही है, अत: मसौदा-समिति ने संघीय संविधान-समिति की रिपोर्ट की कंडिका 14 में सुझाये गये प्रावधान को हटा देने का निश्चय कर लिया और एक सादा उपाय का सुझाव दिया कि राष्ट्रपति को यह अधिकार दे दिया जाये कि वह द्वितीय सदन में 15 व्यक्तियों को नियुक्त करें जो विशेष ज्ञान अथवा विज्ञान, साहित्य और सामाजिक सेवाओं के व्यावहारिक अनुभव के प्रतिनिधि हों। मसौदा-समिति ने मसौदा तैयार कर लिया उसके पश्चात् इस विचार पर संघीय विधान-समिति ने फिर पुनर्विचार किया और उस अधिवेशन में समिति ने यह सुझाव दिया कि मनोनयनों की कुल संख्या को जो पहले 15 तक सीमित थी दो श्रेणियों में विभाजित किया जाये, अर्थात् कुछ लोग ऐसे हों जो परिषद् के पूर्ण सदस्य हों और उन्हें विशेष ज्ञान और कला, विज्ञान, साहित्य तथा सामाजिक सेवाओं का व्यावहारिक अनुभव हो और तीन अन्य व्यक्तियों को मनोनीत किया जाये जो किसी विशेष विषय पर, जो उस समय संसद् के विचाराधीन हो, संसद को सहायता तथा मंत्रणा दें।

संघीय संविधान-समिति के दूसरे अधिवेशन की सिफारिश के प्रथम भाग को अनुच्छेद 67 में निहित कर दिया गया है जिसे सभा पारित कर चुकी है। संविधान में इस अनुच्छेद को तो इसलिये रखने का प्रस्ताव है कि संघीय संविधान-समिति की सिफारिश के दूसरे भाग को लागू करना है। माननीय सदस्य देखेंगे कि इस अनुच्छेद से उसके अधीन मनोनीत सदस्यों के कृत्य सीमित हो जाते हैं। उसके कृत्य परिषद् को एक विशेष विषय पर परामर्श देना तथा उनकी सहायता करना है जो परिषद् के समक्ष हों; दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 67-ए के अधीन जो सदस्य मनोनीत किये जायेंगे, उनकी पदावधि और कालावधि उस विशेष विधेयक के वाद-विवाद की अवधि के अनुसार ही होगी जिसके संबंध में राष्ट्रपति उन्हें परिषद् की सहायतार्थ तथा परामर्श के लिये मनोनीत करे।

अनुच्छेद 67-ए की दूसरी कंडिका से आप देखेंगे कि उन्हें केवल वाद-विवाद में भाग लेने का ही अधिकार है, चाहे वह वाद-विवाद समस्त परिषद् में हो अथवा किसी समिति विशेष में हो जिसमें परिषद् उन्हें सदस्य मनोनीत कर दे; किन्तु उन्हें मत देने का जरा भी अधिकार नहीं है, जिससे कि इन तीन सदस्यों को बढ़ा देने से परिषद् के मतदाताओं की संख्या में नि:संदेह कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि सभा अनुच्छेद 67-ए में निहित नये प्रावधान को स्वीकार करेगी। मैं सभा को बता देता हूं कि अनुच्छेद 67-ए में परिषद् के लिये विशेषज्ञों को मनोतीत करने का जो प्रावधान है वह नया जरा भी नहीं है। सभा के जिन सदस्यों को भारत-शासन-अधिनियम 1919 के प्रावधानों का ज्ञान है वे जानते हैं कि जब उस अधिनियम के अनुसार सदन में जनता का प्रतिनिधित्व रखा गया,

तब तक और प्रावधान भी रख दिया गया जिससे विभिन्न प्रांतों के गवर्नरों को अधिकार दिया गया था कि वे किसी विशेष मामले पर विशेषज्ञ नियुक्त कर सकते हैं जब सदन उस मामले पर विचार कर रहा हो। मेरे विचार में यह लाभदायक प्रावधान है और यदि संविधान में ऐसा प्रावधान रखा गया तो यह बहुत अच्छी चीज होगी।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जहां तक नये प्रावधान का संबंध है, इसकी कोई सूचना पहले नहीं दी गई थी और हम नहीं जानते थे कि ऐसा प्रावधान सभा के समक्ष आने वाला है। हमें जो मुद्रित पुस्तक दी गई है उसमें यह नहीं है। हमें इसके अस्तित्व के विषय में प्रथम बार ही पता लगा है। इन परिस्थितियों में मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस धारा को स्थगित कर दें, जिससे हम न इस उचित संशोधनों की सूचना दे सकें। जहां तक अनुच्छेद 67-ए के प्रावधानों का संबंध है, वे सरसरी तौर पर देखने पर अत्यधिक विस्तृत दिखाई देते हैं। हमने अभी सुना है कि इन मनोनीत व्यक्तियों की शक्तियां उस विधेयक विशेष के वाद-विवाद के अवधि के बराबर ही होंगी, किंतु इसका संकेत करने के लिये इस धारा में कुछ उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार मैं समझता हूं कि 'उक्त विधेयक के संबंध में' ये शब्द बहुत विस्तृत हैं। मैं समझ सकता हूं कि परिषद् यह मान ले कि इन विशेषज्ञों को नियुक्त कर दिया जाये और फिर उनकी शक्तियां उसी अवधि तक सीमित हों जिसमें वह विधेयक विधान-मंडल के कार्यक्रम में रहे और उसी हद तक कि विधेयक पर विचार किया जा रहा हो। 'उक्त विधेयक के संबंध में' इन शब्दों का यह अर्थ हो सकता है कि जब भी इस प्रकार के किसी प्रावधान को लिया जाये, इसके संबंध के किसी मामले.....

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): माननीय सदस्य की आवाज सुनाई नहीं दे रही है।

***अध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य चाहते हैं कि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद स्थगित रहे?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** बिल्कुल।

***अध्यक्षः** क्या सभा की भी यही इच्छा है कि यह स्थगित रहे?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): अभी हम वाद-विवाद कर सकते हैं और यदि मसौदा-समिति इस पर पुनर्विचार करना चाहे तो हम बाद में ऐसा कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** सुझाव यह है कि यह चीज पहले सदस्यों को नहीं भेजी गई थी। सदस्य समय चाहते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि सभा चाहती है कि इस विषय पर वाद-विवाद स्थगित कर दिया जाये, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्ष:** हम आज इसे स्थगित कर देते हैं और हम इस पर बाद में विचार करेंगे।

अनुच्छेद 68

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 68 विधान का भाग हो।''

अब हम इस अनुच्छेद के संशोधनों को लेंगे।

(संशोधन संख्या 1453 और 1454 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 1455 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है। मेरे विचार में वह शाब्दिक संशोधन है। क्या आप इसे पेश करना चाहेंगे। इन शाब्दिक संशोधनों के विषय में मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर को एक सुझाव देने वाला हूं। उनके संबंध में वे उनकी सूचना देने वाले सदस्यों के साथ बातचीत करके विचार कर सकते हैं और जिन्हें स्वीकार करना हो उनके विषय में जब सदन में प्रस्ताव पेश हो तब उन्हें स्वीकृत ही मान लिया जाये, किंतु हां, जिन्हें स्वीकार न करना हो उनके विषय में हमें विचार करना होगा कि उनका क्या किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मसौदा-समिति को शायद इस प्रणाली का अनुसरण करने में बहुत प्रसन्नता होगी।

अध्यक्ष: इससे बहुत समय बचेगा और मैं इन सब शाब्दिक संशोधनों और वाक्य-रचना संबंधी संशोधनों को और ऐसे संशोधनों को जो अनुच्छेद के सार से सम्बद्ध नहीं है, छोड़ दूंगा।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** नहीं, श्रीमान्। यह वाक्य-रचना संबंधी नहीं है।

***अध्यक्ष:** संशोधन में है कि 'तीसरा' शब्द के स्थान पर 'दूसरा' यह शब्द हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं इसे पेश नहीं करता।

(संशोधन संख्या 1457, 1458, 1460 और 1461 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1459 लगभग वाक्य-रचना संबंधी है। संशोधन संख्या 1462 शाब्दिक है। संशोधन संख्या 1463 वाक्य-रचना संबंधी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में अंग्रेजी के शब्दों 'by the President' के स्थान पर 'by Parliament by law' ये शब्द रख दिये जायें।''

मैंने जो संशोधन पेश किया है उसके लिये कोई व्याख्या देना अपेक्षित नहीं है। आप देखेंगे कि विद्यमान में इस खंड के अनुसार संसद के जीवन को बढ़ाने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी। यह अनुभव होता है कि यह साधारण वैधानिक प्रावधानों पर ऐसा आक्रमण है कि ऐसी शक्ति वास्तव में संसद में निहित होनी चाहिये और संसद को यह अधिकार देना चाहिये कि वह अपना जीवन बढ़ाने के लिये विधि द्वारा ऐसा प्रावधान करे और प्रस्ताव आदि किसी अन्य उपाय से न करे।

(संशोधन संख्या 1460 पर संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1465 : वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ गया। इसे लेना अपेक्षित नहीं है।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, अंत के विराम के स्थान पर अर्धविराम (;) रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जाये:
>
> 'Provided further that the People's House, elected after the Proclamation has ceased to operate, shall hold office only for the balance of the period of 4 years for which it would have been elected if the dissolution had taken place in the normal course under this section. The same provision shall apply to any Parliament elected after the dissolution of its predecessor if it had been dissolved before the completion of the normal term of 4 years.' ''
>
> [परन्तु आगे यह भी कि उद्घोषणा के प्रवर्त्तन की समाप्ति के पश्चात् चुनी हुई लोक सभा चार वर्षों की उस अवधि के शेष भाग के लिये ही अधिकारयुक्त रहेगी जिसके लिये कि वह चुनी जाती, यदि विघटन इस धारा के अधीन सामान्यत: होता। यही प्रावधान उस संसद के लिये लागू होगा जो अपनी पूर्ववर्त्ती संसद के विघटन के बाद चुनी जाये, यदि वह 4 वर्ष की सामान्य अवधि की समाप्ति के पूर्व ही विघटित हो जाये।]

इस संशोधन का सुझाव रखने में, मैं दो सिद्धांतों पर बल देना चाहता हूं एक तो यह कि किसी महान् राष्ट्रीय संकटकाल के पश्चात् या तुरन्त पश्चात् निर्वाचित कोई संसद सम्भवत: उस संकटकाल के कारण ही प्रभावित होगी। अत: यदि वह पूरी अवधि के लिये निर्वाचित हो और शेष रहे हुए समय के लिये न हो तो यह सम्भव है कि ऐसी संसद को उन मामलों का निर्णय करना होगा जो उस सामान्य चुनाव में, जिसके द्वारा वह चुनी गई है, उठे ही न हों अथवा बहुत तुच्छ रूप में ही उठे हों। मेरे विचार में,

[प्रो. के.टी. शाह]

यदि संसद को उन लोकप्रिय भावनाओं तथा प्रश्नों की प्रतिनिधि तथा प्रतिबिम्ब होना है तो इसकी अवधि इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिये कि वह लोक-भावनाओं से पूर्णत: सम्पर्क में न रहे, जो कि समय-समय पर परिवर्तनशील परिस्थितियों में बदलती रहती है। अत: यह अत्यंत महत्त्व की बात है कि संसद का जीवन अत्यधिक लम्बा नहीं होना चाहिये।

एक पिछले संशोधन द्वारा मैंने संसद की अवधि चार वर्ष करने का प्रयत्न किया था। किन्तु वह अपेक्षाकृत कम महत्त्व की चीज होने के कारण मैंने उस संशोधन को पेश करना आवश्यक नहीं समझा। किन्तु, यहां मैं इस बात पर बल देना चाहता हूं कि संकटकाल के पश्चात्, किंतु संकटकाल का प्रभाव समाप्त होने से पूर्व संसद चुनी जायेगी, यह बात महत्त्वपूर्ण है और हमें यह संसद केवल उस शेषावधि के लिये चुननी चाहिये जिसके लिये उसकी पूर्ववर्त्ती संसद चुनी जाती और जो अवधि शेष रह गई है।

जैसा मैं पहले कह चुका हूं, इसका कारण यह है कि गम्भीर संकटकाल के दबाव में निर्वाचित संसद, उस संकटकाल के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण जनता की सामान्य भावनाओं को प्रतिबिम्बित न करेगी, विशेषतया जबकि वह संकटकाल इतना भयानक था कि उद्घोषणा करनी पड़ी अथवा संविधान को भी स्थगित करना पड़ा। अत: यह सर्वोत्तम उपाय है कि लोगों का तथा जनमत का प्रतिनिधित्व उचित प्रकारेण प्राप्त करने के लिये, संसद केवल शेषकाल के लिये ही चुनी जाये।

यदि वह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाये, तो मेरे विचार में अगला खंड केवल एक तर्कसंगत परिणाम होगा। अर्थात्, हर बार, संकटकाल-स्थिति की उद्घोषणा के पश्चात्, जो भी संसद चुनी जाये वह शेषकाल के ही लिये चुनी और पूरी अवधि के लिये न चुनी जाये जैसा कि सामान्यत: संविधान के अधीन निर्देशित होगा।

मेरे विचार में, यह भी ठीक ही होगा, यद्यपि मैं उसका अधिक महत्त्व नहीं समझता, किंतु हमारे वैधानिक विकास में एक सानुरूपता बनाने रखने के लिए ठीक ही रहेगा कि लोकप्रिय विधान-मंडल की सामान्य अवधि पांच वर्ष ही रहे और इस प्रकार नियमित क्रम से पंचवर्षीय अवधि की पुनरावृत्ति हो और यदि बीच में किसी संकटकाल के कारण बाधा पड़ जाये, जैसाकि इस धारा में प्रावधान है तो उसका यह उपचार हो कि नई संसद केवल उस शेषकाल के लिये चुनी जाये, जो संकटकाल के समय शेष हो।

मेरे विचार में यह अत्यन्त सादी सी बात है और यदि इसे स्वीकार कर लिया जाये, तो इससे संसद लोक-भावनाओं से अधि पूर्ण अवगत होगी, जितनी कि उस समय नहीं होती यदि

आप उसे पूरे समय के लिये चुनी जाने दें, यद्यपि वह उस संकटकाल के दबाव में चुनी गई हो जो समाप्त हो गया है, किंतु जिसका प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है।

मैं सदन से अनुरोध करता हूं कि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

***अध्यक्षः** एक कठिनाई है। आपने अपने नाम का दूसरा संशोधन जो चार वर्ष की अवधि नियत करने के संबंध में था, पेश नहीं किया।

***प्रो.: के.टी. शाहः** मैं उसे पांच वर्ष करने के लिये पूर्णतः उद्धृत हूं।

***अध्यक्षः** क्या आप इस समय ऐसा कर सकते हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** यह तो आप के हाथ में है। मैंने जानबूझकर इसे पेश नहीं किया था।

***अध्यक्षः** हम इस पर बाद में विचार करेंगे। श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय!

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं अपना संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** दो संशोधन पेश किये गये हैं, एक तो डाक्टर अम्बेडकर द्वारा और दूसरे प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा। उन दोनों और इस अनुच्छेद पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करने खड़ा हुआ हूं। उसका विरोध करने का मेरा कारण यह है कि उनका संशोधन यह है कि 'President' शब्द के आगे 'with the Consent of the Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें। अनुच्छेद 68 में लिखा है:

> ''कि उस अवधि को, उस समय जबकि संकटकाल प्रवर्तन में है, राष्ट्रपति एक वर्ष से अनधिक समय के लिये बढ़ा सकता है, आदि।''

मान लीजिये, संसद का अधिवेशन नहीं हो रहा, तो उस अवस्था में हम क्या करेंगे? अन्ततः राष्ट्रपति समस्त भारत का प्रतिनिधि है। उसको बहुत विस्तृत शक्तियां मिलनी चाहियें, और मेरे मतानुसार यह शक्ति राष्ट्रपति के हाथ में रहनी चाहिये, जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो और जब संकटकाल का मामला हो। अतः मैं संशोधन का विरोध करता हूं और चाहता हूं कि विधान के मसौदे में जैसे यह प्रावधान है वैसे ही इसे रहने दिया जाये।

अगला संशोधन प्रोफेसर शाह का है। मुझे इस पर दो आपत्तियां हैं। वह शाब्दिक संशोधन हो सकता है। आखिर यह एक संशोधन है और यदि यह स्वीकृत हो जाये तो विधि-ग्रंथ

[मि. तजम्मुल हुसैन]

में रखा जायेगा। अत: प्रत्येक शब्द ठीक होना चाहिये। यहां उन्होंने ''Peoples' House'' शब्द प्रयोग किये हैं। विधान के मसौदे में ''Peoples House'' इस नाम की कोई चीज नहीं है। लोक सभा है। दूसरी बात भी है, जो आपने स्वयं बता दी है, कि मेरे मित्र श्री के.टी. शाह ने चार वर्ष की अवधि की चर्चा की है किंतु हम पहले ही पांच वर्ष की अवधि स्वीकार कर चुके हैं। इस संशोधन पर यह दो आपत्तियां हैं और मुझे भरोसा है कि सभा मुझसे सहमत होगी और दोनों में से किसी संशोधन को स्वीकार नहीं करेगी और संविधान के मसौदे में जो शब्द हैं उन्हें ही रहने देगी।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन के विषय में, वे चाहते हैं कि जब संकटकाल में सदन का विघटन हो जाये तो संसद की अवधि पांच वर्ष नहीं होनी चाहिये, वरन उस शेषकाल के लिये ही होनी चाहिये जो पिछली परिषद् के समय में से शेष हो। मुझे तो यह विचित्र बात दिखती है। यदि सदन का विघटन होना है तो वह असाधारण स्थितियों में ही होगा और सदन का केवल छोटी सी बात पर विघटन नहीं किया जायेगा। जब सदन में अवरोध हो जाये, जब मंत्रिमंडल स्थिर न हो अथवा सभा ठीक प्रकार कार्य न कर रही हो, तब कोई आगे बढ़कर सदन का विघटन कर देगा जिससे कि नई सभा की स्थापना की जा सके और उस अभिप्राय के लिये निश्चय ही निर्वाचक मंडल को बताना होगा कि जो सदस्य चुने गये थे, उन्होंने ठीक काम नहीं किया है और इससे अवरोध हो गया है और सभा का कार्य चल नहीं सकता, अत: नई सभा को पांच वर्ष की पूरी अवधि मिलनी चाहिये। प्रोफेसर शाह ने कोई भी ऐसा उदाहरण नहीं दिया है जिससे कि वे सभा को बता सकते कि विघटन की दशा में ऐसी घटनायें हो सकती हैं जिनमें उनके पेश किये हुए संशोधन की आवश्यकता हो। मुझे भारत का एक उदाहरण पता है, जबकि एक सभा का निर्वाचन के एक वर्ष पश्चात् ही अवरोध हो जाने के कारण विघटन कर दिया गया था और निर्वाचकों ने पूरे 50 नये सदस्य चुने और सभा पूरी अवधि तक काम करती रही। ऐसा होना ही चाहिये, क्योंकि यदि अतीत में सदस्यों ने ठीक प्रकार काम नहीं किया तो कोई कारण नहीं है कि नये सदस्यों को भी पूरी अवधि से क्यों वंचित रखा जाये। अत: मेरा यह कहना है कि नई सभा को पूरी अवधि प्राप्त होनी चाहिये, जैसा कि समस्त संसार में होता है और पिछले सदस्यों की त्रुटि या कदाचार के कारण नये सदस्यों को उनके अधिकारों से वंचित नहीं किया जाना चाहिये। अत: मैं ऐसे संशोधन का विरोध करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, डाक्टर अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है मैं उसके लिये उनको धन्यवाद देता हूं। किंतु वैयक्तिक तौर पर मेरा ख्याल था कि वह परन्तुक हट जाना चाहिये। इसका यह अर्थ होगा कि कुछ

विशेष संकटकालीन स्थिति में वह सभा जो पांच वर्ष के लिये चुनी जाये, दस वर्ष के लिये भी रह सकती है। मान लीजिये कोई युद्ध बीच में आ जाता है और संकट कालीन स्थिति की घोषणा कर दी जाती है और कोई निर्वाचन नहीं होता। युद्ध लम्बे समय तक चल सकता है—ऐसी बात अभी इंग्लिस्तान में हुई थी और संसद नौ वर्ष तक चलती रही। अमरीका में तो युद्ध के मध्य में भी निर्वाचन हुये थे और वर्ष के पश्चात् युद्ध की तीव्रतम स्थिति में नई प्रतिनिधि सभा तथा नई सीनेट भी बनी थी। मैं अनुभव करता हूं कि प्रत्येक पांच वर्षों में लोगों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिलना चाहिये और किसी संकटकालीन स्थिति में लोगों के इस अधिकार को छिनने नहीं देना चाहिये। यदि विशेष परिस्थिति में संसद की अवधि को बढ़ाना पड़े भी, तो उस अवधि-वृद्धि की सीमा होनी चाहिये। यह सीमा एक वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये।

अध्यक्षः माननीय सदस्य ने इस परन्तुक को हटा देने के सम्बन्ध में किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं प्रस्ताव पर बोल रहा हूं।

***अध्यक्षः** आप समुचे परन्तुक का विरोध कर रहे हैं। यही आपका भाषण है। डाक्टर अम्बेडकर इस समय भी इस आशय का संशोधन पेश नहीं कर सके। मैं नहीं समझता कि यह प्रश्न पैदा होता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** यह संविधान में कमी है और इससे लोग प्रति पांच वर्ष अपने प्रतिनिधि चुनने के लिये अपने अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, जहां तक संशोधन संख्या 1464 का संबंध है, मेरे विचार में सभा इसे बिना किसी विरोध के पारित कर देगी, किन्तु जहां तक प्रोफेसर शाह के संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे उनसे पूरी सहानुभूति है कि उन्होंने ऐसी विशेष स्थिति की कल्पना करने में बहुत परिश्रम किया है जो पैदा हो सकती है; किन्तु इस मामले के कई पहलू है जिनसे वही प्रयोजन अपूर्ण रह जाता है जिसका उन्हें ध्यान है। वास्तव में उनका संशोधन इतनी सावधानी से नहीं रचा गया है कि वह उस विशेष स्थिति में काम दे सके जबकि मान लो संकटकालीन स्थिति की अवधि साढ़े चार वर्ष हो। यदि संकटकालीन स्थिति की अवधि साढ़े चार वर्ष हो तो क्या नई सभा केवल छह ही मास के लिये चुनी जायेगी और यदि संकट स्थिति 5 वर्ष तक ही चलती रहे तो नई सभा कितने समय के लिये चुनी जायेगी? यदि संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये तो यही बेहूदगियां पैदा होती हैं, क्योंकि जब हम भविष्य में पैदा होने वाली छोटी-छोटी विशेष परिस्थितियों पर अत्यन्त ध्यान से विचार करते हैं तो हम प्रायः अन्य कुछ विशेष स्थितियों

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

की उपेक्षा कर जाते हैं जिनसे हमारे विचार शायद व्यर्थ ही हो जायें क्योंकि भविष्य में पैदा होने वाली प्रत्येक संभावित घटना के लिये हम प्रावधान करने में असफल रहते हैं। अत: यद्यपि मैं प्रोफेसर शाह के इस विचार से पूर्ण सहानुभूति रखता हूं कि यदि संभव हो सके तो 'खाकी' निर्वाचन जैसे निर्वाचनों को नहीं होने देना चाहिये और जो सभा उस आधार पर चुनी जाये उसे स्थायी नहीं बनाना चाहिये, किंतु मेरे विचार में ऐसी बातों को होने से रोकने में मानव-बुद्धि शक्तिहीन है। अत: मैं उनसे अनुरोध करना चाहता हूं कि वे अपने संशोधन पर जोर न दें क्योंकि उसमें स्वयं ऐसे कीटाणु हैं जिनसे वही प्रयोजन असफल हो जाता है, जिसके लिये उन्होंने अपना संशोधन भेजा है। अत: मेरे विचार में, डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के सिवाय, जिसे मैं आशा करता हूं सभा मान लेगी, अनुच्छेद जैसे का तैसा ही रहे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझता कि वाद-विवाद के मध्य मेरे संशोधन संख्या 1464 पर कोई ऐसी बात कही गई है जिसका उत्तर देना अपेक्षित हो। मेरे विचार में इस संशोधन में एक अत्यन्त सुचारू सिद्धांत निहित है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार कर लेगी।

मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन पेश किया है, मेरे विचार में उससे जो कठिनाइयां पैदा होती हैं उनमें से कुछ तो मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पहले ही बता दी है। आखिर निर्वाचन कोई सीधी सी बात नहीं है। इसमें अत्यधिक धन खर्च होता है और मेरे विचार में यह सरकार के प्रति और जनता के प्रति अन्याय होगा कि अल्पकालों के लिए बार-बार निर्वाचन करने का अत्यधिक व्यय उन पर लादा जाये। मुझे प्रोफेसर शाह के इस दृष्टिकोण से पूरी सहानुभूति है कि यह सदा का अनुभव है कि जब भी कोई निर्वाचन युद्ध के तुरन्त बाद ही होता है तो, कई बार लोग अपना संतुलन इतना खो बैठते हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि वह निर्वाचन लोगों की भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। किन्तु साथ ही, मेरे विचार में, केवल युद्ध ही ऐसा कारण या परिस्थिति नहीं है जिससे लोगों के मस्तिष्क अपने सामान्य आधार से उखड़ जायें। कई अन्य परिस्थितियां भी हैं, कई अन्य घटनायें है जो वास्तविक युद्ध चाहे न हों, पर जिनसे लोगों के मस्तिष्कों का संतुलन बिगड़ जाता है। अत: इससे कोई लाभ नहीं है कि एक विशेष स्थिति के लिए प्रोफेसर शाह के संशोधन द्वारा उपबन्ध कर दिया जाये और दूसरी विशेष स्थितियों को अछूता छोड़ दिया जाये। अत: मुझे यही जंचता है कि स्थिति को वैसे ही रहने दिया जाये जैसे संविधान के मसौदे में है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1464 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, 'by the President' इन शब्दों के स्थान पर 'by Parliament by Law' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् एक और परन्तुक है जिसका सुझाव प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन संख्या 1466 में दिया है।

''कि अनुच्छेद 68 के खंड (2) के परन्तुक में, अंत के विराम के स्थान पर अर्धविराम (;) रख दिया जाये तथा निम्न शब्द जोड़ दिये जायें—

'परन्तु आगे यह भी कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की समाप्ति के पश्चात् चुनी हुई लोक सभा चार वर्षों की उस अवधि के शेष भाग के लिये ही अधिकारयुक्त रहेगी जिसके लिये कि वह चुनी जाती, यदि विघटन इस धारा के अधीन सामान्यत: होता। यही प्रावधान उस संसद के लिये लागू होगा जो अपनी पूर्ववर्त्ती संसद के विघटन के बाद चुनी जाये, यदि वह चार वर्ष की सामान्य अवधि की समाप्ति के पूर्व ही विघटित हो जाये।''

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में समस्त अनुच्छेद पर मत लूंगा।

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 68 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 68 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 68-ए

***अध्यक्ष:** अब मैं नए अनुच्छेद 68-ए पर आता हूं, जिसे रखने का प्रस्ताव है। डा. अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 68 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:

'68-A. A person shall not be qualified to be chosen to fill a seat in Parliament unless he—

(a) is a citizen of India;

(b) is in the case of a seat in the Council of States, not less than thirty-five years of age and, in the case of a seat in the House of the People, not less than twenty-five years of age, and

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

(c) possesses such other qualifications as may be prescribed in this behalf by or under any law made by Parliament.' ''

[68-ए कोई व्यक्ति संसद में किसी स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचित होने के योग्य तब तक नहीं होगा, जब तक कि वह—

(क) भारत का नागरिक न हो;

(ख) राज्य-परिषद् में किसी स्थान की पूर्ति होनी हो, तो 35 वर्ष की आयु से अनधिक हो और लोक सभा में किसी स्थान की पूर्ति होनी हो तो, 25 वर्ष से अनधिक आयु का हो, और

(ग) ऐसी अन्य योग्यताएं न रखता हो जो कि इस विषय में संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के द्वारा या अधीन निर्धारित की जायें।]

श्रीमान, इस अनुच्छेद का उद्देश्य ऐसी योग्यताओं का निर्धारण करना है, जो उस व्यक्ति में होनी चाहिये जो किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी होना चाहता हो। सामान्यत: नियम यह है कि जो व्यक्ति मतदाता हो वह केवल इसी कारण कि वह मतदाता है, निर्वाचन में अभ्यर्थी खड़ा होने का अधिकारी है। इस अनुच्छेद में यह सुझाव रखा गया है कि अभ्यर्थी बनने के लिये मतदाता होना तो अपेक्षित योग्यता है ही, इसके साथ ही जो मतदाता अभ्यर्थी होना चाहे, उसमें कुछ अन्य योग्यताएं भी होनी चाहियें। यह अन्य योग्यताएं इस नये अनुच्छेद 68-ए में दी हुई हैं।

मेरे विचार में सभा सहमत होगी कि यह वांछनीय है कि वह अभ्यर्थी जो वास्तव में विधान मंडल में सेवा करना चाहे, कुछ योग्यताओं का भागी होना चाहिये जो केवल मतदाता होने के लिये अपेक्षित योग्यताओं से अधिक उच्च हो। उसे सदन में जो कर्त्तव्य निभाने होते हैं उनके लिये सांसारिक मामलों के अनुभव, कुछ विशेष ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव की आवश्यकता है, और मेरे विचार में यदि यह अतिरिक्त योग्यताएं स्वीकार कर ली जायें, तो हम ऐसे प्रकार के अभ्यर्थी प्राप्त कर सकेंगे, जो साधारण मतदाता मात्र की अपेक्षा अधिक अच्छे प्रकार से सदन की सेवा कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** इस पर कुछ संशोधन हैं: संशोधनों पर संशोधनों की सूची में संख्या 80 श्री नजीरुद्दीन अहमद का है। यह भी वाक्य रचना संबंधी संशोधन दिखाई देता है और मैं इसे मसौदा समिति पर छोड़ देता हूं कि वे इसका निबटारा, प्रस्तावक से परामर्श करके, कर लें।

तत्पश्चात् संख्या 81 भी वाक्य रचना सम्बन्धी संशोधन दिखाई देता है। इसमें, अन्त में 'and voter' ये शब्द जोड़ने का सुझाव है। मैं इसे भी छोड़ देता हूं क्योंकि यह भी लगभग रचना संबंधी है।

(संशोधन संख्या 82, संख्या 83 और संख्या 84 पेश नहीं किये गये।)

तत्पश्चात् हम दूसरी सूची को लेते हैं जो आज सबके पास भेजी गई है। उस सूची का संशोधन संख्या 4 सरदार हुकम सिंह और श्री लक्ष्मी नारायण शाहू के नाम में है।

(वह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 5 और 6 भी पेश नहीं किये गये।)

मुझे श्रीमती दुर्गाबाई के एक अन्य संशोधन की भी सूचना मिली है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करती हूं:

> ''कि नये अनुच्छेद 68-ए के, जिसे अनुच्छेद 68 के पश्चात् रखने का प्रस्ताव किया गया है, खंड (ख) में 'पैंतीस' शब्द के स्थान पर 'तीस' शब्द रख दिया जाये।''

इसका उद्देश्य यह है कि राज्य-परिषद् में स्थान के लिये आयु 35 से घटाकर 30 कर दी जाये। किसी समय सोचा जाता था कि अधिक आयु से पुरुष और स्त्रियों में अधिक बुद्धि आ जाती है किन्तु नई स्थितियों में हमारे लड़के और लड़कियां अधिक विकासशील हैं और अपने उत्तरदायित्व को अधिक अच्छी तरह समझते हैं, बुद्धिमानी आयु पर निर्भर नहीं होती। यह भी विचार किया जाता था कि दूसरी सभा में अधिक आयु के लोग हों, क्योंकि वह दोहराने वाली सभा होगी, जो विधि निर्माण के काम में शीघ्रता पर भी रोक रखेगी। किन्तु यह तो पुरानी कथा है और पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था आ गई है। जैसा कि मैंने कहा है कि हमारे लड़के और लड़कियां अब अधिक विकासशील हैं और अब शिक्षण का पाठ्यक्रम इतना विस्तृत है कि इससे वे अपने नागरिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के विषय में बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। अत: मेरे विचार में हम नवयुवकों को अवसर देना चाहिये कि वे राज्य के मामलों में शिक्षण प्राप्त कर सकें। मैंने कहा कि बुद्धिमानी आयु पर निर्भर नहीं है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री 40 वर्ष की आयु से पूर्व ही कांग्रेस के अध्यक्ष बन गये थे और पिट इंगलिस्तान के प्रधानमंत्री बनने के समय 24 वर्ष का ही था। अत: हमें यह आशंका नहीं करनी चाहिये कि एक व्यक्ति 30 वर्ष का ही है केवल इसी कारण वह राज्य संबंधी कार्य नहीं कर सकेगा। मुझे आशा है कि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेगी। श्रीमान्, मैं इसे पेश करती हूं।

***अध्यक्षः** अब संशोधन और मूल सुझाव दोनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): श्रीमान्, मुझे मेरी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई से यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि बुद्धिमत्ता आयु पर निर्भर नहीं है;

[श्री एच.वी. कामत]

मुझे आशा है, वह इस पर भी सहमत होंगी कि वह लिंग पर भी निर्भर नहीं है। (कई माननीय सदस्यगण : 'आपत्ति'') वे मित्र जो इस पर आपत्ति करते हैं यहां आकर अपने ही प्रश्न का उत्तर दें और इस सभा को अपनी बात पर विश्वास दिलायें। इस संविधान में लिंग के कारण विभेद नहीं किया गया है और मुझे आशा है कि आज हमारे यहां गार्गी, मैत्रेयी और उभयभारती जैसी दार्शनिक नारियों की परम्परा है, अत: बुद्धिमत्ता लिंग पर निर्भर नहीं है। हमारे महानतम ग्रंथ, महाभारत में यह चीज मानी गई है, उसमें एक श्लोक है:

न तेन बद्धो भवति येनास्य पलितं शिर:, यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा: स्थविरं विदु:।।

इसका अर्थ है, कि एक व्यक्ति केवल इसलिये वृद्ध या बुद्धिमान नहीं है कि उसके बाल सफेद हो गये हैं।

अत: राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिये आयु-सीमा कम करने के सम्बन्ध में श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का समर्थन करते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं है। मैं तो और भी आगे बढ़कर दोनों सदनों के लिये एक ही आयु-सीमा रख देता और उस सीमा को घटाकर 21 वर्ष कर देता। कहा गया है कि पिट छोटी आयु में ही इंग्लिस्तान के प्रधानमंत्री बन गये थे। मेरे ख्याल में वे 21 वर्ष की आयु में या कुछ अधिक में ही संसद के सदस्य बन गये थे और 24 वर्ष की आयु में प्रधानमंत्री बन गये थे। यह तो अलबत्ता अपवाद ही है और हम अपवादों के आधार पर कानून नहीं बना सकते किन्तु कुछ भी हो मैं समझता हूं कि इस सीमा को 35 से 30 कर देना बुद्धिमानी होगी। किन्तु इसके संबंध में एक कठिनाई हो सकती है। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 152 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अन्तर्गत राज्यों का विधान-मंडलों के दूसरे सदन की सदस्यता के लिये 35 वर्ष की आयु रखी गई है। मुझे आशा है कि जब हम उस अनुच्छेद पर पहुंचे तब इस संशोधन को ध्यान में रखकर, केन्द्र के द्वितीय सदन के विषय में जो कुछ किया जाये वही प्रांतों तथा राज्यों के द्वितीय सदनों के विषय में भी कर दिया जायेगा और वहां भी आयु-सीमा कम करके तीस वर्ष कर दी जायेगी। जब एक व्यक्ति, जो 35 वर्ष से कम है, केन्द्र के द्वितीय सदन में स्थान की पूर्ति कर सकता है तो कोई कारण नहीं है कि वह राज्य में ऐसा न कर सकें। दूसरी कठिनाई, जो अधिक महत्त्व की नहीं है, अनुच्छेद 55 (3) के कारण है जो हम पहले पास कर चुके हैं और जिसे हम अब संशोधित नहीं कर सकते, जिसमें यह लिखा है कि उप-राष्ट्रपति होने के लिये कोई व्यक्ति 35 वर्ष पूरे कर चुका होना चाहिये। अब राज्य-परिषद् का सभापति ऐसा व्यक्ति होगा जो कि उस परिषद् का सदस्य हो। श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन में (सदस्यता की) आयु-सीमा को 35 से घटाकर 30 कर देने का प्रस्ताव है। इसका यह अर्थ हो गया कि राज्य-परिषद् का प्रत्येक सदस्य राज्य-परिषद् के सभापति पद के लिये खड़ा हो या चुनाव लड़ने के

योग्य न होगा, क्योंकि यदि वह 30 और 35 के बीच में हो तो वह निर्वाचन के लिये अर्ह न होगा। केवल इसीलिये कि वह 35 वर्ष से कम है वह उप-राष्ट्रपति के पद पर आसीन नहीं हो सकता। यह एक विसंगति है जो मुझे कुछ अच्छी नहीं जंचती। कोई व्यक्ति राज्य-परिषद् के लिये चुना जाये और राज्य-परिषद् अपने में से ही एक उप-राष्ट्रपति चुना जाए, किन्तु उसकी आयु उसके लिये एक अड़चन बन जाये, यह मेरे विचार में दुर्भाग्य है। यदि यह अनुच्छेद स्वीकार हो जाये, तो इस कठिनाई को पार करने का मुझे कोई उपाय नहीं सूझता, जब तक पहले पारित किया हुआ अनुच्छेद समुचित रूपेण संशोधित न किया जाये। कोई व्यक्ति जो कि सदन का सदस्य हो वह उसी कारण से उस परिषद् के किसी निर्वाचन में खड़े होने के योग्य होना चाहिये। किन्तु श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन के अन्तर्गत यह एक असंभवता बना दी गई है, केवल इसीलिये कि कोई व्यक्ति 30 और 35 वर्ष के बीच में हो। यदि कोई व्यक्ति द्वितीय सदन में एक स्थान पर आसीन होने के लिये उपयुक्त है तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि वह राज्य-परिषद् के उपाध्यक्ष के पद पर आसीन होने के योग्य क्यों न हो और केवल आयु के कारण निर्योग्य क्यों बना दिया जाये? मुझे आशा है कि मसौदा समिति के बुद्धिमान व्यक्ति इस विसंगति पर गौर करेंगे और जहां तक उनकी बुद्धि उन्हें ऐसा करने दे इसका सुधार करने का प्रयत्न करेंगे।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि दोनों में कोई विसंगति या परस्पर विरोध है। मसौदा समिति इस प्रश्न पर विचार कर सकती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं स्पष्टत: कह देता हूं कि मुझे डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन पर हर्ष नहीं है। मैं नहीं समझता कि इससे विधान अधिक अच्छा बन जायेगा। जैसा कि अभी कहा गया है संसार में ऐसे मामले हुए हैं जबकि 25 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों ने उच्चतम स्थान ग्रहण किये हैं। नवयुवक पिट का उदाहरण अभी दिया गया था शंकराचार्य 22 वर्ष की आयु में जगदगुरू बन गये थे और केवल 32 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। सिकन्दर 25 से अनधिक अवस्था में विश्वविजयी बन गया था और 32 वर्ष की आयु में उसका भी देहांत हो गया था। हमारे 30 करोड़ के देश में अकाल-प्रौढ़ नवयुवक हो सकते हैं जो 25 वर्ष से कम की आयु में उच्चतम पद पर आसीन होने के योग्य हों और उन्हें उस अवसर से वंचित नहीं किया जाना चाहिये।

इस संशोधन के भाग (2) के कारण नवयुवक मतदाताओं के अभ्यर्थी बनने में अनावश्यक रूपेण बाधा पड़ती है। इस खंड से वे लोग निर्वाचन के अयोग्य हो जायेंगे जो अपनी आयु 35 वर्ष से कम की बतायें। किसी व्यक्ति के किसी निर्वाचन में अभ्यर्थी बनने की योग्यता में उस आयु के प्रश्न का कोई संबंध नहीं होना चाहिये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

तीसरा भाग तो और भी अधिक हानिकारक है। आज जो संसद है वह ऐसे प्रतिबंध लगा सकती है जिससे सत्तारूढ़ दल अपने विरोधियों को पराजित कर सके। सत्तारूढ़ दल बहुमत से ऐसे कानून पारित कर सकता है और अभ्यर्थियों के लिये ऐसी योग्यताएं निर्धारित कर सकता है। जिनसे उन्हें अपने विरोधियों के विरुद्ध सहायता मिल सके। संसद को केवल बहुमत से अभ्यर्थियों के लिये योग्यताएं निर्धारित करने की जो शक्ति दी जा रही है वह हानिप्रद है। अतः मेरे विचार में संशोधन बहुत प्रसन्नता की बात नहीं है और मैं बल दूंगा कि डाक्टर अम्बेडकर इस पर विचार करें कि वे इसे वापिस ले सकते हैं या नहीं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** मैं अपनी माननीया मित्र श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा पेश किये गये संशोधन पर संशोधन का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है उसके अनुसार उस व्यक्ति की आयु, जो राज्य-परिषद् में स्थान के लिये अभ्यर्थी खड़ा होना चाहे, कम से कम 35 वर्ष होनी चाहिये। वास्तव में मेरा मत यह है कि 30 वर्ष से भी कम आयु होनी चाहिये। जब कोई व्यक्ति प्रौढ़ता प्राप्त कर ले तो वह योग्य बन जाना चाहिये। क्योंकि इस आशय का कोई प्रस्ताव पेश नहीं है, अतः मेरे लिये कोई और उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन का समर्थन करूं।

श्रीमान्, मुझे एक फारसी पद का स्मरण हो आया है, किः

बुज़र्गी बा अक्ल अस्त, ना बा साल,
तवंग्री वा दिल अस्त, ना बा माल।

पहले भाग का अर्थ है कि वृद्धता आयु के अनुसार नहीं होती, वरन् बुद्धिमता के अनुसार होती है। मैं दूसरे भाग का अनुवाद नहीं करूंगा। यदि कोई व्यक्ति विवेकशील हो तो उसे राज्य परिषद् में प्रवेश करने से कौन रोक सकता है, चाहे वह 30 वर्ष से कम हो? श्री कामत ने नवयुवक पिट का उदाहरण दिया है। शंकराचार्य का भी उदाहरण है जिनका 32 की आयु में देहांत हो गया था, किन्तु उससे पहले उन्होंने जगदगुरू का पद प्राप्त कर लिया था। राम, कृष्ण और बुद्ध के भी उदाहरण जिन्होंने अत्यन्त अल्प आयु में ही ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इतिहास में कई अन्य दृष्टांत भी हैं। श्रीमान्, मैं श्रीमती दुर्गाबाई द्वारा पेश किये गये संशोधन का में बल पूर्वक समर्थन करता हूं।

जहां तक डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का संबंध है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। उसमें तीन योग्यताओं का उल्लेख है। मेरे मतानुसार संसद में स्थान प्राप्ति के लिये केवल यही योग्यता उपेक्षित है कि वह सूचीबद्ध मतदाता हो। ज्योंही किसी व्यक्ति का नाम मतदाताओं की सूची में आया कि आप उसे निर्वाचन में खड़ा होने या मत देने से नहीं रोक सकते।

निर्वाचन अधिकारी तो वहां होगा ही और पहचान के पश्चात् उसे कोई मत देने से रोक नहीं सकता। यदि वह 35 का न होकर 25 का हो तो उसे अभ्यर्थी बन कर खड़ा होने से क्यों रोका जाये? कानून का साधारण सिद्धांत यही है कि यदि कोई व्यक्ति मत दे सकता है तो वह निर्वाचन के लिये खड़ा भी हो सकता है। यह संशोधन उस सर्वमान्य सिद्धांत वे विरुद्ध रहेगा क्योंकि इसका यह आशय होगा कि मतदाता निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता। डॉ. अम्बेडकर को इसे वापिस ले लेना चाहिये। कोई व्यक्ति मतदाता बन जाये तो वह निर्वाचन के लिये योग्य हो जाना चाहिये और इसलिये, श्रीमान्, मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का विरोध करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि इसमें समुचित परिवर्तन कर लें।

***महबूब अली बेग साहिब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया हुआ संशोधन निर्दोष नहीं है। यह भयानक संशोधन है और जनतंत्रीय सिद्धांतों के विरुद्ध है।

पिछले अनुच्छेद 67 के खंड (6) में किसी व्यक्ति को मतदाता बनने की योग्यताओं का वर्णन है। वहां निश्चित रूपेण लिखा है कि वह किन परिस्थितियों में मतदाता बन सकता है और किन परिस्थितियों में नहीं बन सकता। आपने स्पष्टत: कह दिया है कि वह 21 वर्ष का होना चाहिये। ऐसा व्यक्ति निर्वाचनों में मतदाता पंजीबद्ध होने का अधिकारी होगा, यदि वह इस संविधान के अधीन अथवा संसद के किसी अधिनियम के अधीन अनिवास, मस्तिष्क की विक्षिप्तता, अपराध अथवा भ्रष्टाचार या अवैध आचरणों के आधार पर अन्यथा निर्योग्य न ठहरा दिया जाये। अत: श्रीमान्, इस खंड में आपने सुनिश्चित रूप से ऐसे सिद्धांत रख दिये हैं जिनके अनुसार यह संविधान या संसद का कोई अधिनियम किसी व्यक्ति को मतदाता बनने के अयोग्य ठहरा सके। किन्तु अब हम इस संशोधन में क्या देखते हैं? इस संशोधन में खंड (3) एक अशुभ खंड है जो भावी संसद को यह शक्ति देता है कि वह किसी व्यक्ति को किसी भी कारण से संसद का सदस्य बनने के लिये निर्योग्य ठहरा सकती है। आपने उन स्थितियों को निर्धारित नहीं किया है जिनके संबंध में निर्योग्यता का विधान बनाया जा सके, जैसा कि मतदाता के विषय में किया गया है। अत: कोई प्रतिक्रियावादी संसद, कोई पूंजीवादी संसद यह विधि बना सकती है कि कोई व्यक्ति जो कि चुनाव में खड़ा होना चाहे, 5,000 एकड़ भूमि का स्वामी होना चाहिये या एक लाख आयकर देने वाला होना चाहिये। आप कल्पना कर सकते हैं, श्रीमान कि भविष्य में कई प्रतिक्रियावादी संसद किस प्रकार संसद की सदस्यता को उन व्यक्तियों तक सीमित कर सकती है जिन्हें वे अपने दृष्टिकोण से योग्य समझे। श्रीमान्, हमने इस संसद में जो उपबंध किया है, अर्थात् प्रौढ़ मताधिकार का, उसे बाद में समाप्त किया जा सकता है। जो वस्तु एक हाथ से दी गई है वह, उदाहरणार्थ, स्वामित्व-विषयक असम्भव

[महबूब अली बेग साहिब बहादुर]

योग्यताएं रखकर, दूसरे हाथ से छीनी जा सकती है। अत: इन परिस्थितियों में एक नागरिक को निर्वाचन में खड़े होने के अपने अधिकार से वंचित किया जा सकता है।

और यह तो एक मान्य सिद्धांत है कि जब आप संविधान बना रहे हैं तो आपको यह बात भावी-विधान-मंडल पर छोड़ देनी चाहिये कि वे उन व्यक्तियों की योग्यताएं निर्धारित करें जो कि चुनाव में खड़े होना चाहते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि संविधान में अनावश्यक प्रावधान तो रख दिये गये हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रावधान जो किसी व्यक्ति को संसद का सदस्य बनने के योग्य या अयोग्य ठहराता है, भावी संसद पर छोड़ दिया गया है। यह सिद्धांत के विरुद्ध है; जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है, कि आप अभी ऐसी व्यवस्था तैयार कर रहे हैं जिससे एक व्यक्ति नागरिक बनेगा और वह व्यक्ति कुछ विशेष स्थिति में मतदाता और संसद का सदस्य अथवा मंत्री, अथवा राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति बन सकेगा। आप जब मतदाता के लिये योग्यताएं निश्चित करते हैं, जब आप राष्ट्रपति अथवा उप-राष्ट्रपति इत्यादि बनने के लिये योग्तयाएं निर्धारित करते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि आप निर्वाचन के लिये खड़े होने की योग्यता का प्रश्न भावी संसद पर छोड़ दें। यह भयानक बात है और सिद्धांत के विरुद्ध है। इस संशोधन के प्रथम भाग में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और भयानक प्रावधान है। खंड (ख) के संबंध में मैं उन लोगों से सहमत हूं जिनका यह मत है कि एक बार आप मतदाता घोषित हो जायें तो आपको निर्वाचन में खड़े होने का अधिकार होना चाहिये। आप विशेष योग्यताएं होने पर एक विशेष आयु के लोगों को मताधिकार देकर संसद के प्रतिनिधित्व का आधार विस्तृत करना चाहते हैं, केवल इसी बात के आधार पर प्रत्येक मतदाता को निर्वाचन के लिये खड़ा होने का अधिकार मिल जाना चाहिये। मैं जानता हूं कि ऐसे संविधान हैं जिनमें संसद का सदस्य बनने के लिये भिन्न योग्यताएं रखी गई हैं यह सत्य है। यह बात लोक सभा की अपेक्षा राज्य-परिषरद के विषय में अधिक सत्य है। चाहे कुछ भी हो मैं इस बात के लिये भी सहमत हो सकता हूं कि निर्वाचन खड़ा होने के इच्छुक व्यक्ति की आयु-सीमा बढ़ा दी जाये, किन्तु इस बात के विरुद्ध हूं कि संसद का सदस्य बनने के लिये किसी व्यक्ति की अर्हता या अनर्हता के विषय में कानून बनाने का अधिकार भावी संसद को दे दिया जाये। मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इस गंभीर आपत्ति पर विचार करेंगे और अपने संशोधन को वापिस ले लेंगे और यदि आवश्यक हो तो उसे समुचित संशोधनों के साथ पेश करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर पेश किये गये श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन के विषय में मुझे केवल कुछ ही शब्द कहने हैं इस पर मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने इस संशोधन पर इस आधार पर आपत्ति

की है कि उपराष्ट्रपति की, जोकि राज्य-परिषद का सभापति होगा, अर्हता की आयु 35 वर्ष है, इसलिये उस संस्था के सदस्यों की आयु कम करना व्यर्थ है। मुझे भय है कि मेरे माननीय मित्र ने इस संशोधन विशेष में असंगता पाई है और ऐसा करते समय यह नहीं सोचा कि उप-राष्ट्रपति की आयु 35 वर्ष की निश्चित करने का क्या कारण है। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे अनुच्छेद 47 को देखें जिसमें राष्ट्रपति की आयु 35 वर्ष निश्चित की गई है। स्वभावत: क्योंकि रिक्तता होने पर उप-राष्ट्रपति को राष्ट्रपति का स्थान लेना होगा, अत: अनुच्छेद 55 में उप-राष्ट्रपति की आयु भी 35 वर्ष की रखी गई है। राज्य-परिषद के सदस्यों की आयु से इसका कोई संबंध नहीं है। अत: इसमें कोई भी विसंगति नहीं है कि राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिये योग्यता की आयु ऐसी निश्चित कर दी जाये तो उसके सभापति के लिये निश्चित आयु से कम हो। मुझे आशा है कि परिषद् समझ जायेगी कि इसमें कोई विसंगति नहीं है और उप-राष्ट्रपति की आयु बिल्कुल अन्य कारणों से ही 35 वर्ष की रखी गई है। इसका राज्य-परिषद् के सदस्यों की अर्हता की आयु से कोई संबंध नहीं है। जहां तक कि डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन से उत्पन्न दूसरी बातों का संबंध है, मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर उनका उपयुक्त उत्तर दे देंगे, यद्यपि मेरा ख्याल है कि वे आपत्तियां तुच्छ हैं और विषय से सम्बद्ध नहीं हैं, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि किसी अभ्यर्थी की योग्यताएं वहीं हों जो कि मतदाता की हो। भूतकाल में वे हमारे अपने विधान-मंडल में ही भिन्न-भिन्न थीं और कई अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न है। अत: अभ्यर्थियों के लिये एक विशेष प्रकार की अर्हताएं तथा मतदाताओं के लिये भिन्न प्रकार की अर्हताएं, जो कम कठोर हों, रखने में कोई बड़ा पाप नहीं है। इस तुच्छ सी बात पर बहुत शोर किया गया है कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन शरारतपूर्ण है तथा अन्यायपूर्ण है। मुझे पूर्ण आशा है कि परिषद् यह समझ जायेगी कि वह बातें वास्तव में स्थिति का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है और उनका समस्या से वास्तव में कोई संबंध नहीं है। मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन द्वारा संशोधित रूप में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं श्रीमती दुर्गाबाई के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। मैं कोई अन्य संशोधन स्वीकार नहीं कर सकता।

***अध्यक्ष:** क्या आप उत्तर देना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि मेरे लिये उत्तर देना अपेक्षित है, बस इतना ही कहना काफी है कि यदि मैं श्रीमती दुर्गाबाई का संशोधन स्वीकार कर लूं, तो वह कुछ पहलुओं से अनुच्छेद 152 और 55 से असंगत होगा, क्योंकि प्रांतों के द्वितीय सदन में हमने आयु-सीमा 35 वर्ष रखी है और उप-राष्ट्रपति के लिये भी

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

आयु-सीमा 35 ही रखी है। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि यदि वह विभेद रहे भी, तो कोई बड़ी बात नहीं है और सभा को अब भी यह अधिकार है कि, यदि वह चाहे तो, एक सी आयु-सीमा निर्धारित कर सकती है।

***अध्यक्ष:** मैं अब संशोधन पर और अनुच्छेद पर भी, यदि संशोधन स्वीकृत हो जाये तो संशोधित रूप में, मत लेना चाहता हूं। ऐसा करने से पूर्व मैं एक बात कहना चाहता हूं, किन्तु सभा के मत को प्रभावित करने के विचार से नहीं। इस देश में हम उस व्यक्ति के लिये, जो विधान-मंडल द्वारा पारित कानून का अर्थ निकालने के लिये न्यायाधीश नियुक्त हो, बहुत उच्च योग्यताएं अपेक्षित समझते हैं। हम यह भी जानते हैं कि उन लोगों से भी, जो कानून का अर्थ निकालने में न्यायाधीशों की सहायता करे, अति उच्च योग्यता की आशा की जाती है। किन्तु ऐसा दिखाई देता है कि सदस्यगण का यह मत है कि जिस व्यक्ति को कानून निर्माण करना है उसे किसी योग्यता की अपेक्षा नहीं है और यदि हम उग्रतम स्थिति पर विचार करें तो हो सकता है कि नितांत योग्यता हीन व्यक्तियों का विधान-मंडल ऐसी बातें पारित कर सकता है जो सर्वथा बुद्धि विहीन हो और उस कानून का अर्थ निकालने के लिये सारे कानूनवेत्ताओं और न्यायाधीशों का विवेक अपेक्षित होगा। यह एक विसंगति है किन्तु मुझे ऐसा दिखाई देता है कि इस युग में हमें ऐसी प्रकार की विसंगति को तो सहन करना ही होगा और मुझे तो कम से कम इस पर संतोष ही करना होगा, यद्यपि मैं इसे पसंद नहीं करता।

प्रश्न यह है:

> ''कि नये अनुच्छेद 68-ए के, जिसे अनुच्छेद 68 के पश्चात् रखने का प्रस्ताव किया गया है, खंड (ख) में 'पैंतीस' शब्द के स्थान पर 'तीस' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

अध्यक्ष प्रश्न यह है:

> ''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 68-ए विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 68-ए संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 69

***अध्यक्ष:** इस पर कुछ संशोधन हैं। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संख्या 1469।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में, twice at least in every year, and six इन शब्दों के स्थान पर 'once at least in every year at the beginning thereof, and more than three' ये शब्द रख दिये जायें।''

इस परिवर्तन के फलस्वरूप, संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

"संसद के सदनों का प्रत्येक वर्ष में कम से कम एक बार, उस वर्ष के आरंभ में, आह्वान किया जायेगा और उनके एक सत्र की अंतिम बैठक और उनके अगले सबके लिये नियुक्त दिवस के मध्य तीन मास से अधिक का समय नहीं गुजरेगा।''

श्रीमान्, इस संशोधन पर बोलने से पूर्व, क्या मैं यह कह सकता हूं कि मेरा एक और संशोधन भी है जो इसका पूरक है और यदि दोनों को साथ ही पेश किया जाये, तो परिषद् का समय बच सकता है और मैं जो बात कहने वाला हूं वह अधिक स्पष्ट हो सकती है। अतः यदि आप मुझे वह बाद वाला संशोधन (संख्या 1464) भी साथ ही पेश करने दें तो, अच्छा रहेगा।

***अध्यक्षः** हां।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) के पश्चात्, निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that Parliament or either house thereof, once summoned and in session, shall continue to remain so during the year; and each sitting shall be deemed to be continuous for the entire parliamentary year notwithstanding any interruption due to holidays, adjournment, or prorogation.'

[किंतु संसद या उसका कोई सदन, एक बार बुलाये जाने पर तथा सत्र आरम्भ होने पर, वर्ष भर इसी प्रकार चलता रहेगा; और प्रत्येक बैठक समस्त संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर अधिवेशन में समझी जायेगी चाहे छुट्टियों, स्थगन अथवा सत्रावसान के कारण बाधा पड़े।']"

श्रीमान्, यह खंड विद्यमान रीति के अनुरूप रखा गया प्रतीत होता है, जिसके अनुसार विधान-मंडल प्रतिवर्ष दो अधिवेशनों के लिये समवेत होता है, एक आय-व्यय अनुमान अधिवेशन और दूसरे शरद-ऋतु अधिवेशन के लिये।

अब, मेरे विचार में यह रीति उस समय की सरकार की सुविधा के लिये बन गई थी और यह भी कारण था कि उन दिनों संसद के कृत्य बहुत सीमित थे। उस समय

[प्रो. के.टी. शाह]

के विधान-मंडल की शक्तियां तथा प्राधिकार और इस कारण, कार्य अत्यन्त सीमित प्रकार के होते थे, अतः स्वभावतः यही समझा जाता था कि संसद में पेश होने वाले कार्यों के लिये वे सीमित बैठकें ही पर्याप्त थीं। अब क्योंकि संसद का कार्य बढ़ गया है, उस कार्य के परिणामस्वरूप अधिक महान् उत्तरदायित्व आ गया है और इस संविधान के अंतर्गत, जब यह लागू होगा, सदस्यों की संख्या भी डेढ़ सौ से बढ़कर कम से कम 500 हो जानी है, अतः मुझे यह ख्याल होता है कि पहले के समान छह-छह मास तक अब बैठकें रुक नहीं सकती और न इतनी रुकनी ही चाहिये और सदन के कार्य में उस तरह विघ्न नहीं पड़ना चाहिये जैसे कि पहले रूढ़ि बन गई थी।

इंग्लिस्तान में भी यही रिवाज है कि संसद के अधिवेशनों को समूचे संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर एक ही समझा जाता है, चाहे बड़े दिन की या ईस्टर की या अन्य स्वीकृति की छुट्टियां वित्त में पड़ जाये। ब्रिटिश संसद एक वर्ष में लगभग 200 दिन काम करती है, जबकि हमारा विधान-मंडल 100 दिन से भी कम कार्य-व्यस्त रहता है। यदि मैं कह दूं तो, हमारी संसद बहुत ही कम कार्य करती है, कम से कम हमारे कार्य के घंटों के हिसाब से तो यही बात है। हम एक सप्ताह में 5 दिन कार्य करते हैं और प्रतिदिन पौने पांच घंटे, अर्थात् एक सप्ताह में 24 घंटे, जो कि सामान्य श्रमिक के सप्ताह से आधा है। अतः स्वभावतः संसद का कार्य बहुत जल्दबाजी में और रूपरेखा-मात्र ही होता, चाहे वह प्रशासन की देखभाल के विषय का काम हो चाहे आर्थिक प्रहरी के रूप में कार्य हो, अथवा कोई नीति संबंधी कार्य हो विधान-निर्माण की सब बारिकियों की तो बात ही छोड़ दीजिये। यह सब कुछ इस सीमित समय में और उन थोड़े से घंटों में नहीं हो सकता, जिनमें बैठने की अब तक भारतीय विधान-मंडल की आदत रही है।

अपनी युक्तियों के लिये दृष्टांत स्वरूप मैं कह सकता हूं हमें अधिकांश को इसका अनुभव है कि उदाहरणार्थ, प्रश्नोत्तर के समय में, उस दिन के लिये नियत अधिकांश प्रश्न परिषद् में बिना उत्तर दिये ही रह जाते हैं यह भी एक उपाय है जिससे कि प्रशासन के कार्यों की आलोचना, देखभाल, नियंत्रण, तथा आयंत्रण किया जाता है। किन्तु अन्य काम करने के लिये उपलब्ध समय के अन्तर्गत, यह कर्त्तव्य उतनी अच्छी तरह पूरा नहीं किया जा सकता जितना कि होना चाहिये। प्रश्न करने के अधिकार का दुरुपयोग होने से रोकने के लिये सूचना संबंधी, प्रश्न के रूप संबंधी तथा पूरक प्रश्नों के पूछने की प्रणाली संबंधी बहुत से प्रतिबंध अथवा शर्तें हैं। देश के सामान्य प्रशासन पर नियंत्रण रखने का समूचा काम, प्रश्न पूछने के इस उपाय द्वारा, संतोषजनक रीति से पूरा नहीं किया जा सकता और इसका यही कारण है कि हमारे पास समय इतना सीमित होता है कि सदन के समक्ष प्रस्तुत काम को हम निबटा नहीं सकते।

संसदीय कर्त्तव्यों के दूसरे पहलू भी हैं, जो इसी प्रकार तथा इसी कारण से ठीक प्रकार नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, आय-व्यय अनुमान चिट्ठ पर ही विचार कीजिये। अब हमारा बजट साढ़े तीन अरब का होता है; करोड़ों के बाद करोड़ों मुश्किल से दो-तीन घंटे के वाद-विवाद के बाद मंजूर कर दिये जाते हैं, जिसमें से आधे से अधिक समय प्रस्तावकर्त्ता मंत्री, पेश करते समय या उत्तर देते समय, ले लेता है। रक्षा-बजट के लिये, जो कुल मिलाकर लगभग एक अरब 60 करोड़ था, हम केवल पौन चार घंटे दे सके, अर्थात् सदन द्वारा दिये गये वास्तविक सुझाव उपलब्ध समय के अत्यन्त, अत्यधिक छोटे अंश तक सीमित रह जाते हैं। हमारे वाद-विवाद में रचनात्मक, सहायक सुझाव के लिये कठिनाई से समय मिलता है। मैं समझता हूं कि यह बात संसदीय कर्त्तव्यों से पूर्णतः निर्वहन के लिये तथा जनतंत्रात्मक पद्धति की पूर्णरूपेण क्रियाशीलता के लिये असंगत है यदि ऐसे नितांत आवश्यक मामलों के विषय में लोक-भावना को समुचित प्रकार से तथा पूर्णरूप से व्यक्त करना है।

जब विद्यमान प्रणाली निश्चित हुई थी, तब यह सर्वथा सम्भव थी, क्योंकि देश का आधे से अधिक बजट हमारे वाद-विवाद की समक्षता के परे था। प्रशासनीय कार्यवाही के एक बड़े अंश पर भी सदन में सिंहावलोकन अथवा वाद-विवाद करने की मनाही थी। अतः वह सीमित समय उन दिनों पर्याप्त रहता होगा। किन्तु नये संविधान के लागू होने के पश्चात् संसद को नई शक्तियां मिलने पर और उसके उत्तरदायित्व में बुद्धि होने पर और इसके साथ-साथ सदस्य संख्या में भी वृद्धि होने पर, मेरे विचार में संविधान द्वारा सदन पर प्रति वर्ष 100 दिन के अधिवेशन का प्रतिबंध लगाना, कम से कम मैं यह कहूंगा, संसदीय उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिये पर्याप्त अवसर नहीं देना ही है।

मुझे ज्ञात है कि 'कम से कम' ये शब्द वहां हैं। अतः मैं जानता हूं, संसद को अधिक लम्बे अधिवेशन के लिये बुलाने या अधिक लम्बे समय तक अधिवेशन रहने पर कोई रोक नहीं है।

किन्तु ऐसी बात संविधान में रखनी पड़ी है और इतने स्पष्ट शब्दों में ऐसा उपबन्ध बनाना पड़ा है कि अधिकतम अन्तर्वेला छह मास है और अपनी कार्य-प्रणाली अपने अधिवेशनों, अपने समय को नियंत्रित करने का काम संसद पर नहीं छोड़ा गया है, इन बातों से यही प्रकट होता है कि मसौदा-रचयिता के मस्तिष्क पर अब भी उसी पद्धति का प्रभाव है जिस पर हम अब तक आचरण करते रहे हैं। मैं इसे आपत्तिजनक समझता हूं; और यदि हमें उसे छोड़ना है तो यह महत्त्वपूर्ण है कि हमें इस प्रकार का संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये, जैसा कि मैं पेश कर रहा हूं।

यह इस कारण और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नीति के महान प्रश्नों पर, केवल धन के विषय में ही नहीं, अपितु देश की भावी प्रगति को निश्चय करने के विषय में, अर्थात् आगामी कई वर्षों में इस देश के भविष्य निर्माण के विषय में महान् बातों पर,

[प्रो. के.टी. शाह]

संक्षेप में ही विचार हो सकेगा और इस विषय में संसद का मत संसद में वाद-विवाद निरर्थक ही हो जाता है। समुचित विचार में समय भी एक महत्त्वपूर्ण चीज होती है। अतः मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि किसी वर्ष संसद के किसी दो अधिवेशनों के मध्य तीन मास से अधिक नहीं गुजरने चाहिये और संसद के वार्षिक अधिवेशनों को निरंतर एकल वार्षिक अधिवेशन समझना चाहिये, जिनमें संसद का कार्य होना चाहिये अधिकतम संभव उत्तरदायित्व की भावना से किया जाना चाहिये जैसा कि जनता के प्रतिनिधि अनुभव करें कि वे निर्वाचकों के प्रति रखते हैं।

बैठकों का ब्यौरा, कार्य प्रणाली का ब्यौरा, निश्चित करने का काम आदि सदन पर छोड़ दिया जाना चाहिये, जैसी कि इस संविधान में व्यवस्था की गई है। उस विषय में मुझे और कुछ नहीं कहना है। मेरा पक्का ख्याल है कि अब तक हमने जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर, तथा इस बात को देखते हुए कि एक वर्ष में संसद को कितनी बैठकें करनी चाहिये या एक वर्ष में संसद का अधिवेशन कितनी बार बुलाया जाना चाहिये इन बातों के विषय में स्पष्ट उपबंध रखा गया है यह अपेक्षित है कि हमें, किसी ऐसे उपाय से जैसा कि मैं सुझाव दे रहा हूं, उपबन्धों का संशोधन करना चाहिये। मुझे आशा है कि मैंने जो युक्तियां प्रस्तुत की हैं वे परिषद् को पसंद होंगी और मेरे संशोधन स्वीकार कर लिये जायेंगे।

(संशोधन संख्या 7, श्री लक्ष्मीनारायण साहू तथा सरदार हुकुम सिंह के नामों से था, पेश नहीं किया गया।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान् मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice' शब्द के स्थान पर 'thrice' शब्द रख दिया जाये।''

मुझे भय है कि जब यह अनुच्छेद 69 मसौदा समिति द्वारा रचा गया था, तब समिति के सदस्य भारत-शासन-अधिनियम के भयानक स्वप्न के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये थे। डॉ. अम्बेडकर ने, संविधान के मसौदे पर विचार करने के प्रस्ताव को पेश करते हुए, यह स्वीकार किया था, कि इस संविधान पर अधिकतर भारत-शासन-अधिनियम का प्रभाव पड़ा है और यह बुद्धिमतापूर्वक हुआ है, किंतु यहां मेरे विचार में, संसद को एक वर्ष में कम से कम दो बार बुलाने का उपबन्ध, भारत-शासन-अधिनियम से लगभग पूरी तरह नकल किया गया है, शब्दशः नकल किया गया है और इस बात पर कोई विचार नहीं किया गया कि स्वतंत्र भारत की संसद पर क्या-क्या अतिरिक्त कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व आ पड़े हैं अथवा आने वाले हैं यह बात सुविख्यात है कि अमरीकी कांग्रेस तथा ब्रिटिश संसद प्रतिवर्ष आठ-नौ मास के लिये समवेत होती है। आधुनिक काल में राज्य-कार्य इतना उलझा हुआ तथा विस्तृत हो गया है—हां, मैं जनतंत्र की संसद की चर्चा कर रहा हूं, तानाशाही के अन्तर्गत की संसद का नहीं और मुझे आशा है कि हम अपने देश में जनतंत्र

रखेंगे और तानाशाही नहीं—कि जनतंत्र में कोई संसद तब तक लोगों के प्रति अपने दायित्व नहीं निभा सकती और अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को पूरा नहीं कर सकती, जब तक कि संसद प्रतिवर्ष कम से कम 6 मास तक न बैठे। सभा के पिछले बजट अधिवेशन का एक स्पष्ट उदाहरण है कि एक सरकारी मंत्री ने सभा में यह स्वीकार किया था कि कुछ विशेष व्यय सभा द्वारा स्वीकृति की पूर्वाशा में पूरक रूपेण किया गया था। सरकार के अर्थ मंत्री डॉ. मथाई ने पूरक मांगें पेश करके आधे दिन में अथवा कदाचित दो घंटे से भी कम समय में पारित करवा लीं—मैं तो कहता हूं कि जल्दी-जल्दी स्वीकार करवा लीं, किन्तु फिर भी हम सब सदस्य एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं, पूरा भरोसा करते हैं। उन्हें सदन में यह बात स्वीकार करने के लिये बाध्य होना पड़ा कि ''मेरे पास इस बात की कोई सफाई पेश करने को नहीं है कि सभा को इस पर वाद-विवाद करने के लिये पर्याप्त समय क्यों नहीं दिया गया अथवा सदन की मंजूरी के बिना इतना व्यय क्यों किया गया''। मेरे माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कहा कि आंकड़े करोड़ों रुपये तक पहुंच गये और संसद की स्वीकृति या मंजूरी के बिना ऐसा बड़ा खर्च कैसे किया गया। डॉ. मथाई यही कहकर संतुष्ट हो गये कि यह खर्च सदन की स्वीकृति अथवा मंजूरी की पूर्व आशा से किया गया और सदन ने हंसी ठट्ठा उड़ाया और पूरक मांगों को पारित कर दिया। श्रीमान्, यह अनियमितता न होती यदि संसद वर्ष में समय-समय पर समवेत होती और बैठती तथा केवल उन निर्धारित कालावधियों में ही नहीं बैठती, जो ब्रिटिश शासन में निर्धारित हुई थी—ग्रीष्म अधिवेशन तथा शरद अधिवेशन—वरन् अधिक समय तक बैठती और व्यय की विभिन्न मदें विभिन्न अवसरों पर उसके समक्ष पेश होती तो सरकार के एक मंत्री को इस प्रकार की अपराध-स्वीकृति न करनी पड़ती, जो कि कम से कम, सुखद बात नहीं थी, और सरकार के मंत्री द्वारा ऐसा स्वीकृति का कोई कारण न होता। सभा के माननीय सभापति श्री मावलंकर ने हम में से कुछ लोगों के साथ पिछले अधिवेशन में औपचारिक वार्ता के मध्य कहा था ''यदि हम इस प्रकार चलते रहे तो हम कार्य समाप्त नहीं कर सकते। यदि हम अपने प्रति तथा देश के प्रति न्याय करना चाहते हैं, तो यह अपेक्षित है तथा आवश्यक है कि संसद एक वर्ष में सात-आठ मास से कम न बैठे''।

मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर, सरकार की ओर से, ऐसी स्थिति की कल्पना करते होंगे और उन्हें विश्वास होगा कि संसद के लिये अब से अधिक बार तथा अधिक लम्बे समय तक बैठना अपेक्षित है। मैं इस संशोधन पर बल नहीं देता किंतु एक ही कारण से ऐसा कह रहा हूं कि मानवीय मामलों में निर्धारित न्यूनतम के अधिकतम ही बनने की संभावना रहती है। आर्थिक मामलों में न्यूनतम वेतन का सुविख्यात उदाहरण है; न्यूनतम वेतन अधिकांश उद्योगों में अधिकतम वेतन ही बन जाता है। यहां भी, इसी प्रकार, मुझे

[श्री एच.वी. कामत]

आशंका है कि न्यूनतम निर्धारित के अधिकतम ही बन जाने की संभावना होगी। हमें ब्रिटिश शासन में भी यही अनुभव हुआ है। भारत-शासन-अधिनियम में लिखा है कि संसद एक वर्ष में कम से कम दो बार समवेत होगी; कोई ऐसा वर्ष शायद ही गुजरा हो जब संसद वर्ष में दो बार से अधिक बैठी हो। अतः मैं प्रस्ताव करता हूं कि संविधान में हमें रख देना चाहिये कि संसद प्रतिवर्ष न्यूनतम तीन बार समवेत हो: एक बजट अधिवेशन हो जो लम्बा अधिवेशन होता है, एक अधिवेशन वर्ष के मध्य में हो, जुलाई या अगस्त में दो मास के लिये समझिये, और तत्पश्चात् शरद् अथवा शीत ऋतु में, अक्टूबर अथवा नवम्बर में हो। केवल तभी हम जनता तथा देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकेंगे। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 1472 लगभग वाक्य-रचना संबंधी है।

(संशोधन संख्या 1473 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 1475 भी रचना संबंधी है। संशोधन संख्या 1476 भी रचना संबंधी है। प्रो. शाह, संशोधन संख्या 1477 भी मुझे रचना संबंधी ही दिखाई देता है। यदि आप सहमत हों तो हम इसे छोड़ दें।

***प्रो. के.टी. शाहः** मेरे विचार में इसमें कुछ सारभूत प्रश्न निहित हैं।

श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (क) में 'the House is or either House of' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधित खंड इस प्रकार बन जायेगा:

> ''(2) इस अनुच्छेद के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति समय-समय पर—
>
> (क) संसद के ऐसे समय तथा ऐसे-ऐसे स्थान पर समवेत होने के लिये, जैसे कि वह उचित समझे, बुला सकता है।''

अर्थात्, मेरे विचार के अनुसार किसी सदन को बुलाने के लिये राष्ट्रपति के प्राधिकार की आवश्यकता नहीं है। साधारणतया, द्वितीय सदन, इस संविधान के सिद्धांत के अनुसार, एक अविरत निकाय है, जो विघटित नहीं हो सकता। अतः, वह तो सदा रहेगा ही: यदि यह उपबंध कभी लागू भी होगा तो, जहां तक बुलाये जाने का संबंध है, केवल लोक सभा पर लागू होगा।

मैं स्वयं नहीं समझ पाता कि वर्ष के आरम्भ में द्वितीय सदन को भी बुलाना होगा; अथवा अविरत अस्तित्व में होने के कारण, इसे सदा अधिवेशन में माना जायेगा; या अपनी कार्य प्रणाली द्वारा उसके सत्र बुलाने का वह स्वयं विनियमन कर सकेगी।

उस कठिनाई को दूर करने के लिये, मैंने इन शब्दों को हटा देने का, जिनमें संसद के किसी सदन की विशेष चर्चा की गई है और केवल संसद को बुलाने तक ही शब्दों को सीमित करने का सुझाव रखा है। एक अन्तर है, मैं निवेदन करता हूं, कि संसद शब्द के प्रयोग से और संसद के किसी सदन की विशेष चर्चा करने से, यह प्रकट होता है कि दूसरे निकाय के लिये भी राष्ट्रपति को अधिकार है जो कि अवरित सत्र में रहता है। यदि यह माना जाये कि चाहे द्वितीय सदन निरंतर सत्रासीन हो, फिर भी प्रत्येक अवसर पर इसे बुलाना अपेक्षित है, कम से कम प्रतिवर्ष इसे बुलाना अपेक्षित हो—हां, संयुक्त सत्र के अतिरिक्त ही, तो मेरे विचार में इस उपबन्ध को इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है, जो मुझे कुछ विसंगत सा दिखाई देता है। अतः मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि वह अभिप्राय, चाहे कोई भी अभिप्राय हो, ''संसद' शब्द रखने से पूरा हो जायेगा और संसद के प्रत्येक सदन की विशेष चर्चा करना अपेक्षित नहीं है। अतः मैं इस संशोधन की सदन में सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** संख्या 1478।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (क) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:
>
> 'परन्तु यदि किसी समय राष्ट्रपति इस संविधान में किये गये उपबंध के अनुसार लोक सभा को अथवा लोक सभा के विघटन के पश्चात् संसद के किसी सदन को तीन मास से अधिक समय तक अथवा लोक सभा के जीवनकाल में 90 दिन से अधिक समय तक, नहीं बुलाता, तो लोक सभा का अध्यक्ष तथा राज्य-परिषद का सभापति क्रमशः अपने-अपने सदन को बुला सकता है, जो उस अवस्था में वैधरूपेण में बुलाये गये समझे जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये अथवा आने वाले किसी कार्य को करने के अधिकारी समझे जायेंगे।' ''

श्रीमान्, एक गंभीर मामला है, जिसका आशय यह है कि यदि राष्ट्रपति संविधान में रखे गये समय से अधिक काल तक संसद के सदनों को नहीं बुलाये, तो ऐसी विशेष स्थिति के उपचार के लिये हमारे पास कोई व्यवस्था होनी चाहिये। अतः इस संशोधन द्वारा अध्यक्ष अथवा द्वितीय सदन के सभापति को शक्ति दी गई है कि वह अपने-अपने सदन को बुलाये और इसके लिये राष्ट्रपति के प्राधिकार की प्रतीक्षा न करे और राष्ट्रपति स्वयं सदन को न बुलाये, तब भी वह बुलाये।

[प्रो. के.टी. शाह]

यह भी कहा जा सकता है कि यह संदेह की भावना है; राष्ट्रपति में विश्वास के अभाव की भावना है और इसलिये यह ऐसी बात है जो संविधान में उपबन्धित नहीं होनी चाहिये। लिखित संविधानों में, विशेषत: ऐसों में जैसा कि हम भारत के लिये तैयार कर रहे हैं, ऐसी आकस्मिकताओं के विरुद्ध व्यवस्था होनी चाहिये, जो या तो हमारे इतिहास में घट चुकी है जो अन्यत्र घट चुकी है। हमें अपने तथा अन्य लोगों के अनुभव से भी पाठ सीखना चाहिये। यदि आप ऐसी बातों को अभीष्ट समझते हैं तो हमें उनकी पुनरावृत्ति को रोकने की व्यवस्था करनी चाहिये। अन्य देशों के इतिहास में ऐसे राष्ट्रपति हो चुके हैं, चाहे हमारे न हुए हो, जिन्होंने विधि को अपने हाथ में ले लिया और कहने को संविधान की ही शक्ति से संविधान के अभिप्राय तथा उद्देश्य को बिल्कुल उलट दिया और उसका निराकरण कर दिया। यदि ऐसी आकस्मिकता उत्पन्न हो जाये तो उसके उपचार के लिये संविधान में ही उपबंध होना चाहिये; और जब ऐसी कठिनाई वास्तव में उत्पन्न हो जाये तब उस कठिनाई के परिणामों से संरक्षण में हमारी सहायता के हेतु संविधान का संशोधन करने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

अत: मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि यदि किसी समय, किसी कारण, राष्ट्रपति संसद के किसी सदन को, अंतिम स्थगन के पश्चात् 90 दिन से अधिक समय तक लोक सभा को नहीं बुलाता—संभव है ऐसा कभी भी न हो, किंतु यह ऐसी संभावना है जिसको रोकने के लिये व्यवस्था करना ठीक होगा—तो प्रत्येक सदन के पीठासीन प्राधिकारी को इस बात की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वह कार्यवाही कर सके, सदन का सत्र बुला सके और सदन के कार्य को जारी रख सके। यदि यह कहा जाये, तो संशय की भावना अन्य देशों के पिछले इतिहास के ज्ञान का परिणाम है। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी प्रत्याभूति नहीं है कि ऐसी कोई बात इस देश में होगी ही नहीं। यदि आपका वास्तव में यही मत है कि हमारे लिये ऐसी पूर्वाशा या आशंका करने का कोई कारण नहीं है कि इस भूमि पर ऐसी बात कभी हो सकती है तो लिखित संविधान बनाया ही क्यों जाये? कुछ क्षण पूर्व, मसौदा-समिति के सभापति ने स्वयं ही पिछले एक अनुच्छेद में एक संशोधन उपस्थित किया था, जिससे संकटकाल में संसद के जीवनकाल को बढ़ाने की शक्ति, जो पहले राष्ट्रपति में निहित थी, राष्ट्रपति से संसद को हस्तांतरित कर दी गई।

अब, यदि आपको ज्ञात है कि ऐसी शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है और यदि आप ऐसे दुरुपयोग को रोकने के लिये यह व्यवस्था करना चाहते हैं कि केवल संसद ही कार्यवाही करे, तो मेरे इस सुझाव में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती कि मुझे जिस प्रकार की आकस्मिकताओं की आशंका है उनके पैदा होने पर संविधान में ही कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि उस स्थिति का समाधान हो सके। हमें यह प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये

कि संविधान में बाद में कोई परिवर्तन या संशोधन किया जाये, जिससे स्वयंमेव तथा न्यूनतम कठिनाई से हम अपना प्रयोजन सिद्ध करने में सफल हो सकें।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, संसार का इतिहास उस प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है जिनमें कि संविधानों को उलट दिया गया है। अतः यह बुद्धिमानी ही है कि हमें इस समय ऐसी संभावना अथवा संयोग पर विचार करना चाहिये तथा तदनुसार उपबंध करना चाहिये। अतएव मैं इस संशोधन की भी सभा में सिफारिश करता हूं।

***अध्यक्षः** अगला भी आप ही का है। 1479।

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उप-खंड (ख) में 'the house' शब्दों के पश्चात् 'over a period not exceeding three months' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

मेरे विचार में यह मेरे पिछले सुझावों का निष्कर्ष है और इसलिये यदि पहले वाला स्वीकृत हो जाये, तो मुझे आशा है कि यह भी स्वीकार कर लिया जायेगा।

(संशोधन संख्या 1480 तथा 1481 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के उप-खंड (ग) के अन्त में विराम के स्थान पर एक अर्धविराम रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'On the advice of the Prime Minister, if such dissolution is earlier than the completion of the normal term as provided for in section 68 (2); provided that the reasons given by the Prime Minister for such dissolution shall be recorded in writing' ''

(यदि ऐसा विघटन धारा 68 (2) में उपबन्धित सामान्य अवधि के पूर्ण होने से पहले हो तो प्रधान मंत्री के परामर्श पर ऐसा किया जायेगा; परन्तु प्रधान मंत्री ऐसे विघटन के लिये दिये गये कारण लिखित रूप में अभिलेखार्थ रखे जायेंगे।)

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'(3) यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ हो या अनिच्छुक

[प्रो. के.टी. शाह]

हो और प्रधानमंत्री की सम्मति में राष्ट्रीय आयात हो, तो वह अध्यक्ष तथा राज्य परिषद् के सभापति से प्रार्थना कर सकता है कि संसद के दोनों सदनों का आह्वान किया जाये और उसके समक्ष ऐसा कार्य रखा जाये जो राष्ट्रीय आयात के लिये अपेक्षित हो। इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के किसी सदन में जो कार्य किया जाये, वह वैधरूपेण किया गया माना जायेगा और उसी प्रकार बाध्यकारी होगा जैसे कि सामान्य रूप से पारित किया हुआ संसद का कोई अधिनियम, प्रस्ताव या आदेश हो:

परन्तु यह भी बात है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास या 90 दिन से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो और प्रधान मंत्री भी उक्त प्रार्थना करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो, तो संसद के किसी सदन का सभापति ऐसा कर सकता है और इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन वैधरूपेण आहूत माने जायें और अपने समक्ष रखे गये कार्य को निबटाने के अधिकारी होंगे।' ''

श्रीमान्, यह संशोधन उसी युक्ति पर आधारित है, जो कि मैंने कुछ समय पूर्व सदन के समक्ष रखने का प्रयत्न किया था। इन संशोधनों के पहले वाले में मैं यह कहने का प्रयत्न कर रहा हूं कि यदि संसद को सामान्य अवधि से पूर्व अर्थात् 5 वर्ष से पहली विघटित करना पड़ जाये, तो कोई विशेष कारण होने चाहियें कि ऐसा विघटन क्यों अपेक्षित समझा जाये। मेरा संशोधन ऐसे विघटन पर कोई रोक नहीं लगाता। मेरा तो यही सुझाव है कि ऐसा केवल प्रधानमंत्री के परामर्श पर ही किया जाना चाहिये, जैसा कि सामान्यतया होगा ही; और राष्ट्रपति के प्राधिकार से नहीं होना चाहिये। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि प्रधान मंत्री लिखित रूप में अपने कारण अभिलेख में रखें। क्योंकि मेरे विचार में वे कारण भविष्य के लिये मूल्यवान सांविधानिक दृष्टांत बन सकते हैं और भावी पीढ़ियों में उनका अत्यधिक मूल्य हो सकता है।

अतएव, उस आधार पर मेरा पहला संशोधन, आशा है, बिल्कुल सीधा है और सदन को स्वीकार्य होगा। इसमें कुछ नहीं है, केवल यही बात है कि जब भी प्रधान मंत्री लोक सभा का सामान्य अवधि से पूर्व विघटन कराना चाहे, उसके लिये कारणों का उल्लेख करने के बारे में सांवैधानिक प्राधिकार तथा आदेश दिया जा रहा है।

दूसरे संशोधन के संबंध में यह मामला अधिक गंभीर है। इसमें इस संभावना की कल्पना की गई है कि राष्ट्रपति संसद को एकत्र बुलाने में असमर्थ या अनिच्छुक हो। यह ऐसी संभावना है जिसकी बिल्कुल अवहेलना की ही नहीं जा सकती। हो सकता है यह बार-बार न हो—हमें आशा करनी चाहिये कि यह कभी नहीं हो। उस संभावना में मेरा सुझाव है

कि प्रधानमंत्री को यह अधिकार होना चाहिये कि वह सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों से प्रार्थना कर सके कि वे अपने-अपने सदनों का आह्वान करें और संसद के उस कार्य को जारी रखें, जो शीघ्र होने वाला हो या अपेक्षित हो। दूसरे परन्तुक में मैंने आगे चलकर इस संभावना की भी कल्पना की है कि प्रधानमंत्री ऐसी प्रार्थना करने में असमर्थ अथवा अनिच्छुक हो और राष्ट्रपति भी संसद को बुलाने में असमर्थ या अनिच्छुक हो। उस स्थिति में जब दो मुख्य प्राधिकारी देश के दो प्रमुख कार्यपालक या तो ऐसी प्रार्थना करने में या अपना सांवैधानिक कर्त्तव्य निभाने में असमर्थ हों या ऐसा करने के अनिच्छुक हों, तब सदन के-दोनों सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये कि वे अपने निकाय का सत्र बुला सकें और देश का कार्य सामान्य प्रकार से चला सकें।

***अध्यक्षः** क्या आप कृपया यह बतायेंगे कि संख्या 1483 और संख्या 1478 किस प्रकार भिन्न हैं?

***प्रो. के.टी. शाहः** संख्या 1478 में केवल राष्ट्रपति की ही चर्चा की गई और किसी सदन को बुलाने की प्रार्थना करने के लिये प्रधानमंत्री का नाम नहीं रखा गया है। परन्तुक में यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि यदि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ऐसा करने के अनिच्छुक हों, तो सदनों के पीठासीन प्राधिकारियों को अधिवेशन बुलाना चाहिये। संख्या 1483 में प्रत्येक सदन के पीठासीन प्राधिकारी को ऐसा करने की शक्ति दी गई है और उन दो शर्तों की चर्चा नहीं की गई है, जो बाद में 1483 में रखी गई है। मेरे विचार में दोनों संशोधनों में यही अन्तर है।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल था कि एक-दूसरे में आ जाता है।

***प्रो. के.टी. शाहः** किसी हद तक बाद वाला अधिक सुनिश्चित है। पहले में प्रधानमंत्री को कार्य करना है। किंतु यदि वह उसे करने का अनिच्छुक हो तो शक्ति काम में लाई जायेगी। किंतु कार्यपालिका के सामर्थ्य या इच्छा का प्रश्न न उठाते हुए भी शक्ति स्वतंत्र रूप से काम में लाई जा सकती है।

***अध्यक्षः** मान लीजिये, संख्या 1478 स्वीकृत हो जाता है, तो क्या आपके विचार में संख्या 1483 की आवश्यकता रहेगी?

***प्रो. के.टी. शाहः** नहीं, किसी पर भी मत लिये जाने से पहले यही तो कठिनाई होती है कि दोनों को साथ पेश करना होता है। यदि संशोधन 1478 स्वीकृत हो जाये

[प्रो. के.टी. शाह]

तो मैं स्वयं कह दूंगा कि उन्हें पेश करना अपेक्षित नहीं है। किंतु मैं विभिन्न संशोधन अपने नाम में पेश करता हूं, क्योंकि मुझे कई संभावनाओं की कल्पना और यदि एक स्वीकृत न हो तो कदाचित् दूसरा स्वीकार हो। इन संशोधनों के विषय में मेरा अनुभव यही है कि शायद ऐसी संभावनाओं से सतर्क ही रहना ठीक है। इसी कारण मैं सदन में इन संशोधनों को पेश कर रहा हूं। मुझे आशा है कि वे स्वीकार कर लिये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर तथा संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 69 में संसद के सदनों के सत्र बुलाने का विषय है। इसमें कहा गया है कि संसद के सदन प्रति वर्ष दो बार अनिवार्यत: समवेत होंगे और यह राष्ट्रपति की इच्छा पर छोड़ दिया गया है कि यदि वह आवश्यक समझे, तो उसका समय-समय पर आवाहन करे। वही परन्तुक 1935 के अधिनियम में भी विद्यमान है। मेरे ख्याल में 1935 के अधिनियम में 'दो बार' के स्थान पर 'एक बार' ही है। अनुभव से मैंने देखा है कि साधारणतया मंत्रिगण विधानमंडल के समक्ष आने के अनिच्छुक होते हैं और इसलिये वे विधान-मंडल के सत्र बुलाना नहीं चाहते, जब तक कि सत्र बुलाना विधि के अन्तर्गत आवश्यक न हो। नई व्यवस्था में, जब हम अपना संविधान ब्रिटिश संसदीय प्रणाली के अनुसार बना रहे हैं, तब मैं यह नहीं समझ पाता कि अपने कार्य की प्रणाली के प्रयोजन के विषय में भी हम उसी कार्य-प्रणाली को क्यों न मानें। पिछले दो वर्ष के अनुभव से मैंने देखा है कि समयाभाव से महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्य भी रूका रहता है। कई मंत्रियों के पास, उनके ही कथनानुसार, दूसरा महत्त्वपूर्ण काम करने के लिये होता है और उनके पास विधान-कार्य के समय नहीं होता। दृष्टांत के रूप में मैं कह सकता हूं कि संसद के पिछले सत्र में 11 महत्त्वपूर्ण सरकारी विधेयकों को रोक देना पड़ा, कई महत्त्वपूर्ण गैर-सरकारी विधेयकों और प्रस्तावों की तो बात ही क्या। अब, यह महत्त्वपूर्ण विधेयक तभी पारित किये जा सकते थे, यदि हम संविधान निर्माता निकाय के इस सत्र से ठीक पहले तक अपना कार्य जारी रखते और इस प्रकार मध्यवर्ती पूरा एक मास व्यर्थ होने से बच जाता। किंतु मंत्रीगण अपने साधारण दिन-प्रतिदिन के कार्य में व्यस्त थे। अत: मैं कहता हूं कि कोई नई कार्य-प्रणाली ढूंढनी होगी, जैसे कि इंगलिस्तान की संसद में होता है, जहां कि सदा मंत्रियों को अपना कार्य संपन्न कराने के लिये स्वयं नहीं आना पड़ता, वरन् यह काम उप-मंत्रियों पर छोड़ दिया जाता है। मंत्रिगण यह बहाना नहीं बना सकते कि उन्हें अपेक्षित समय नहीं मिला, अत: वे अपना कार्य पूरा नहीं कर सके। इंगलिस्तान के समान एक नियम होना चाहिये कि संसद समूचे वर्ष भर लगातार समवेत रहे। नियमों के अन्तर्गत हमारे यहां प्रश्नोत्तर-काल होता है और माननीय मंत्रियों के लिये यह बहुत कठिनाई का समय होता है, क्योंकि वही समय होता है जबकि सदस्य सरकार से सूचना प्राप्त कर सकते हैं और मुझे पता है कि कुछ मामलों में मंत्रिगण

किसी-किसी दिन इस प्रश्नोत्तर काल को हटा देना चाहते थे, जिससे कि वे दूसरे एकत्रित कार्य को पूरा कर सकें। वास्तव में ऐसा हुआ है, यद्यपि नियमों के अंतर्गत यह काम अनिवार्य है। ब्रिटिश संसद में भी यह प्रश्नोत्तर-काल बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। वहां वे रात्रि को भी बैठकें करते हैं। मैं जानता हूं कि यहां कुछ हमारे सदस्य अधिक देर तक बैठना पसंद नहीं करते। किंतु मेरा नम्र निवेदन है कि सदस्यों को स्वयं सोचना चाहिये कि नई अवस्था में उन्हें इस कार्य को अधिक समय देना पड़ेगा। यदि हम अधिक समय नहीं दे सकते, तो हम निस्संदेह अपने निर्वाचन-क्षेत्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं कर सकते और नये ढांचे में हमारे लिये कोई स्थान नहीं होगा। नये ढांचे में, जबकि हमारी संसद में छह सौ सदस्य होंगे, तब मैं जानना चाहता हूं कि यदि एक वर्ष में दो ही बैठकें होंगी, तो कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा; मैं समझता हूं कि विधि द्वारा अधिक बैठकें बुलानी पड़ेंगी। श्रीमान्, यह युक्ति दी जाती है कि जब संसद के समक्ष विधान-कार्य लाना होगा तब संसद बुला ली जायेगी। किंतु मैंने आपको उदाहरण दिया है कि महत्त्वपूर्ण विधान-कार्य समयाभाव से पड़ा रह जाता है। मुझे विश्वास है कि यह कार्य उस सत्र में भी पूरा नहीं हो सकेगा और आगामी वर्ष के बजट सत्र में जाकर होगा। बजट सत्र में भी, हम जानते हैं कि करोड़ों रुपये और 80 करोड़ तक के पूरक अनुदान तीन घंटे में निपटा दिये गये और सदस्य विरोध प्रदर्शित करते रह गये। अधिक समय नहीं दिया गया और बहाना यह था कि हमारे पास और अधिक समय उपलब्ध नहीं है। हमें यह तरीका बदलना होगा, यदि हम वास्तव में जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं और यदि हम अपने अर्थ पर प्रभाव डालने वाली बजट की मुख्य मदों पर ध्यान देना चाहते हैं। अतएव मैं कहता हूं कि बजट के वाद-विवाद के लिये जो चार दिन दिये गये हैं, जो हमारे आंदोलन के कारण 8 दिन कर दिये गये थे, वे लगभग तीन अरब रुपये के बजट को और साथ में रेलवे बजट को भी निबटाने के लिये सर्वथा अपर्याप्त है। कुल मिलाकर हमने तीन सप्ताह लिये, जबकि ब्रिटिश संसद तीन-चार मास लेती है। हां, नियमों के अधीन 31 मार्च के पहले हमें व्यय स्वीकार करना होता है। किंतु ब्रिटिश संसद की कार्य-प्रणाली को क्यों नहीं ग्रहण करते, जहां एक विशेष तारीख तक सेवाओं को वेतन दे दिया जाता है? उसके पश्चात् बजट की विभिन्न मदों पर वाद-विवाद जारी रह सकता है। यदि हमारी नई लोक-संसद में हमें बजट के वाद-विवाद के लिये पूरा समय नहीं दिया जाता है, तो मैं पूर्ण विनम्रता से निवेदन करता हूं कि ये लोक-तंत्र का उपहास होगा। हमें बताया जाता है कि हम ब्रिटिश संसद के अतिरिक्त किसी प्रणाली का अनुसरण नहीं करते। फिर आप सब बातों में उनका अनुसरण क्यों नहीं करते और केवल ऐसा क्यों करते हैं कि जब वह आपको अभीष्ट हो तब मान लेते हैं और जब अभीष्ट नहीं हो तो छोड़ देते हैं? मैं बलपूर्वक इसी मत का हूं कि छह सौ सदस्यों का सदन, जनता के सच्चे प्रतिनिधियों का सदन, जनता की सेवा करने का अवसर नहीं पा सकेगा, यदि आप केवल दो ही सत्र बुलायेंगे। आजकल बजट सत्र फरवरी से लगभग 10 अप्रैल तक

[श्री आर.के. सिधवा]

रहता है, शनिवारों और रविवारों को छोड़कर केवल 53 दिन होते हैं। शरद् सत्र केवल तीन सप्ताह होता है जो शनिवारों को तथा रविवारों को निकालकर केवल सोलह-सत्तरह दिनों का होता है। अतएव मेरा यह कहना है कि पार्लियामेंट के समान केवल एक-दो मास के विश्वास को छोड़ सारे वर्ष ही लगातार सत्र रहना चाहिये। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर मेरी युक्तियों पर विचार करेंगे तथा यदि उन्हें जंच जाये कि वे न्यायपूर्ण तथा संगत हैं तो अधिनियम में आवश्यक उपबंध रख देंगे। इससे कार्य-प्रणाली अधिक सुगम हो जायेगी तथा कार्य जल्दी सम्पन्न होगा हम कार्यालयों में पत्र-व्यवहार के विलम्ब पर शिकायत करते हैं। किंतु क्या हम स्वयं विधान-कार्य को निपटाने में पर्याप्त शीघ्रता करते हैं? हमारे लिये यह अपमानजनक है कि गत कुछ मास में समयाभाव के कारण महत्त्वपूर्ण कार्य आगामी सत्र के लिये पड़ा रह गया। यदि मंत्रिगण यह कहें कि विधान-कार्य के लिये अधिक बैठकें अपेक्षित नहीं हैं, तो सदस्यों को 'ना' कहने की कोई जरूरत नहीं है। किंतु सदस्य भी नरम पड़ गये हैं और जब वे देखते हैं कि मंत्रीगण जारी रखना नहीं चाहते तो वे भी सदन को स्थगित करने के लिये सहमत हो जाते हैं। अत: मैं समझता हूं कि भविष्य में कार्य को अच्छी तरह निपटाने के लिये उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिये।

अध्यक्ष: मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि इस समय हम जिस संगति से चल रहे हैं, हमें शायद श्री सिधवा की ही राय मानकर सारे वर्ष बैठना पड़े; और मुझे आशा है कि सदस्य मान जायेंगे कि केवल लम्बे सत्र ही नहीं, प्रतिदिन लम्बी बैठक भी हुआ करे और यदि आवश्यक हो तो प्रतिदिन एक ही बैठक के स्थान पर दो-तीन बैठकें हों। वैयक्तिक तौर पर मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं चाहता हूं कि संविधान यथाशीघ्र समाप्त हो जाये। मुझे आशा है कि जब भी कभी बैठकों की संख्या या घंटों की संख्या बढ़ाने का प्रश्न उठेगा, तब माननीय सदस्य श्री सिधवा की बातों को याद रखेंगे।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** श्रीमान्, मैं सर्वप्रथम श्री कामत के संशोधन पर कुछ कहूंगा, जिसके अनुसार संविधान में उल्लिखित दो सत्रों की जगह संसद के तीन सत्र होने चाहियें। मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं, क्योंकि यह सबको अनुभव है कि बजट सत्र में, जो कि लगभग दो मास का होता है, हम सिवा, बजट तथा कुछ विधेयकों को पारित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। अत: मैं तीन सत्रों के सुझाव का समर्थन करता हूं अर्थात् बजट सत्र, ग्रीष्म सत्र तथा शरद् सत्र होने चाहियें। ऐसा ही एक संशोधन (संख्या 1470) प्रो. शाह का है, जिसमें कहा गया है कि संसद वर्ष के आरम्भ में आहूत होनी चाहिये तथा बीच में अन्तरवेलाओं के अतिरिक्त वर्ष भर चलनी चाहिये। यह भी समुचित दीख पड़ता है और मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इन दोनों में से कौन सा स्वीकृत होता है।

प्रो. शाह ने एक और भी संशोधन पेश किया है, जिससे मैं सहमत हूं, कि यदि गणराज्य का राष्ट्रपति विधान-मंडल को बुलाने में असमर्थ हो, तो राज्य-परिषद् के सभापति अथवा प्रथम सभा के अध्यक्ष को उसका आह्वान करने की शक्ति होनी चाहिये। यदि वे भी ऐसा न करें तो प्रधानमंत्री को चाहिये कि लिखित रूप में इन दोनों सज्जनों से निवेदन करे कि वे संसद का आह्वान करें। किंतु यदि मान लिया जाये कि वे इन्कार कर दें तब क्या होगा? मेरे विचार में ऐसी स्थिति में स्वयं प्रधानमंत्री को संसद के सदनों को आहूत करने की शक्ति होनी चाहिये। यह केवल आपातिक स्थिति के लिये उपबन्ध करना है और निस्संदेह प्रधानमंत्री किसी भी दूसरे से अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। यदि वह समझता है कि संसद को आहूत करने के योग्य आपात है तो उसे ऐसा करने की शक्ति होनी चाहिये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का भी समर्थन करता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर दो दृष्टि बिन्दुओं से आलोचना हुई है अर्थात्—यह कि संसद की बैठकें निरन्तर होनी चाहियें और राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं होनी चाहिये कि वह विधान-मंडल का आह्वान करने से इंकार करके उसे व्यर्थ कर दे। पहली बात पर मैं श्री कामत तथा श्री सिधवा से सहमत हूं। हमारी विद्यमान संसद के अधिवेशन बहुत कम होते हैं और मंत्रिगण तक भी शिकायत करते हैं कि बजट सत्र में उन्हें अपने वर्ष भर के कार्य का पूरा विवरण देने के लिये समय नहीं मिलता। वास्तव में उन्होंने इस बात पर क्षोभ प्रकट किया है कि उन्हें इस प्रयोजन के लिये केवल एक या दो घंटे दिये जाते हैं। मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं अनुभव किया होगा कि सदन यथेष्ट समय तक नहीं बैठता। हमें इस विषय में हाउस आफ कामन्स का अवलम्बन करना चाहिये और मुझे आशा है कि विदेशी शासकों के इस उदाहरण का अनुसरण अब न किया जायेगा, जिन्होंने कि भारत में एक नाटकीय संसद की रचना की थी और हमारी संसद वस्तुत: लक्षणानुसार संसद होगी। इसे व्यय तथा करों की पाई-पाई की देखभाल करने का अवसर मिलेगा। हमें संसद की बहुत लम्बी बैठकें करनी चाहिये, जिससे कि अपने कर्त्तव्यों का समुचित निर्वहन करे सकें। अध्यक्ष आदि द्वारा संसद बुलाने के विषय में प्रो. के.टी. शाह के संशोधन के संबंध में मेरा ख्याल है कि हमारे संविधान में, जो कि ब्रिटिश पद्धति के अनुकूल बनाया गया है, राष्ट्रपति बादशाह के स्थान में ही होगा, अतएव उसकी शक्ति अधिक नहीं होगी। अत: मैं नहीं समझता कि प्रो. शाह की आशंकायें युक्तियुक्त हैं और इसलिये ये उपबंध अनावश्यक हैं। अमरीकी पद्धति के संविधान में यह उपयुक्त होते हैं, क्योंकि वहां राष्ट्रपति को बहुत ज्यादा शक्ति मिली होती है और वह विधान-मंडल के प्रयोजन को निष्फल कर सकता है, किंतु हमारे संविधान में तो वह केवल प्रतीकस्वरूप प्रमुख होता है, अत: वह कुछ गड़बड़ नहीं कर सकता और उसे महाभियोग द्वारा हटाने के लिये भी उपबंध हैं, यद्यपि मुझे आशा

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

है कि ऐसे अवसर नहीं आयेंगे। अत: मेरे विचार में प्रो. शाह का संशोधन उपयुक्त नहीं है। किंतु संसद की बैठकों के विषय में मैं सहमत हूं कि लगातार सत्र होने चाहियें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे खेद है कि इस अनुच्छेद पर जितने भी संशोधन पेश किये गये हैं, उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि सिवाय एक संशोधन के, जिसे मैंने अपने उत्तर के लिये चुना है, किसी अन्य पर टिप्पणी करना अपेक्षित नहीं है। प्रो. शाह द्वारा पेश किये गये संशोधनों से कुछ बातें पैदा होती हैं। उनका प्रथम संशोधन (संख्या 1470) तथा उनका दूसरा संशोधन (संख्या 1479) लगभग एक ही विषय से सम्बद्ध हैं और परिणामत: मैं उनके तर्कों को निबटाने के लिये उन्हें एक साथ लेना चाहता हूं। उन दो संशोधनों में प्रो. शाह ने इस बात पर बल दिया है कि संसद के किसी दो सत्रों के बीच की अन्तरवेला तीन मास से अधिक नहीं होनी चाहिये। दोनों संशोधनों का यही सार तथा आशय है।

प्रो. शाह के इन दो संशोधनों के साथ मैं श्री कामत का संशोधन (संख्या 1471) को ले सकता हूं, क्योंकि उससे भी यही प्रश्न उठता है। मुझे ऐसा दिख पड़ता है कि न प्रो. शाह ने और न श्री कामत ने ही वे कारण समझे हैं कि इन खंडों को पहले-पहल भारत शासन अधिनियम 1935 में क्यों रखा गया था। मेरे विचार में प्रो. शाह तथा श्री कामत समझ लेंगे कि 1935 के अधिनियम के पारण के समय जो राजनैतिक वातावरण था, वह अब के वातावरण से सर्वथा भिन्न था। 1935 में जो वातावरण था उसमें कार्यपालिका विधान-मंडल को टाला करती थी। वास्तव में उस समय से पूर्व विधान-मंडल को प्रधानत: राजस्व के समाहार के लिये ही आहूत किया जाता था। वह केवल बजट के लिये समवेत होता था तथा कार्यपालिका जब अपने आर्थिक प्रस्तावों, अर्थात करों तथा राजस्व के विनियोग दोनों के विषय में विधान-मंडल की स्वीकृति लेने में सफल हो जाती थी, तत्पश्चात् कार्यपालिका इस बात के लिये अतीव उत्सुक नहीं होती थी कि वह विधान-मंडल के समक्ष आकर उसे प्रश्नोत्तर के अधिकार द्वारा दिन-प्रतिदिन के प्रशासन की आलोचना करने दे या सामाजिक शिकायतों के दूर करने के लिये विधान उपस्थित करने दे। वास्तव में मैं स्वयं भारत के उन प्रांतीय विधान-मंडलों के आचरण पर ध्यानपूर्वक गौर करता रहा हूं, जो 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत कार्य करते थे और मैं एक प्रांत विशेष के विषय में जानता हूं, (मैं उसका नाम उल्लेख नहीं करना चाहता) जहां विधान-मंडल समूचे वर्ष में 18 दिन से अधिक समवेत नहीं हुआ और वह भी केवल राजस्व के समाहार विषयक सुझावों पर विधान-मंडल की स्वीकृति लेने के उद्देश्य से ही बुलाया गया था।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** उसके लिये कौन उत्तरदायी था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यही बताने जा रहा था कि इस प्रकार के आचरण के लिये वही मनोवृत्ति उत्तरदायी थी, जो कि भूतपूर्व में कार्यपालिका की होती थी कि विधान-मंडल के समक्ष आने की तथा विधान-मंडल की देखभाल के लिये अपने आप को और अपने प्रशासन को उपस्थित करने की इच्छा न करना।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** वह कौन सा प्रांत था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अच्छा हो आप उसे रहने दीजिये। मैं अपने माननीय मित्र को अलग से बता सकता हूं कि वह कौन सा प्रांत था। यह अनुभव किया गया कि यदि ऐसी बात आगे भी हो, जैसी कि 1935 के पहले होती थी, तो वह लोकप्रिय सरकार का उपहास होगा। विधान-मंडल को केवल राजस्व के समाहरण के निमित्त बुलाना तथा बाद में उसे सर्वथा विघटित कर देना और इस प्रकार उसे प्रश्नोत्तर या विधान-निर्माण द्वारा प्रशासन में सुधार करने के समस्त न्यायपूर्ण अवसरों से वंचित कर देना जो विधि द्वारा उसे प्राप्त हैं, लोकतंत्र का उपहास है जैसा कि मैं कह ही चुका हूं, उस प्रकार की बात को होने से रोकने के लिए ही भारत-शासन अधिनियम 1935 में यह खंड रखा गया था। हमने सोचा—वैयक्तिक रूप से मैं भी सोचता हूं—कि वातावरण अब सर्वथा बदल गया है और मैं नहीं समझता कि कोई कार्यपालिका आगे भी विधान-मंडल के प्रति इस प्रकार का कठोर आचरण करने में समर्थ होगी। इसलिये हमने सोचा कि और भी सावधानी के उपाय रूप में वही खंड हमारे वर्तमान संविधान में रखना अभीष्ट होगा। मेरे मित्र श्री कामत तथा प्रो. शाह की धारणा है कि यह पर्याप्त नहीं है। वे और भी अधिक बार सत्र चाहते हैं। विद्यमान रूप में यह खंड इस बात का कोई निषेध नहीं करता कि इस खंड में जो उपबंध है, उससे अधिक बार विधान-मंडल को बुलाया जाये। वास्तव में मैं कहूं, तो मुझे यह भय है कि संसद के सत्र इतने बार होंगे और इतने लम्बे होंगे कि कदाचित संसद के सदस्य स्वयं सत्रों से परेशान हो जायें। इसका कारण यह है कि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है, वह केवल सुचारू प्रशासन चलाने के लिये ही उत्तरदायी नहीं है, वरन् वह ऐसे विधानी कार्यों के लिये भी जनता के प्रति उत्तरदायी है, जो अपने दल के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये अपेक्षित हो।

इसी प्रकार कई गैर-सरकारी सदस्य भी होंगे, जो शायद अपनी धुन या अपनी तुच्छ तरंगों को पूरा करने के लिये विधान-निर्माण करवाना चाहें। इसके अतिरिक्त एक और कारण हो सकता है जिससे कि कार्यपालिका विधान-मंडल को अधिक बार बुलाने के लिये बाध्य

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

हो जाये। मेरे विचार में समय पर कर-संबंधी विधानों, अनुदानों की मागें तथा पूरित अनुदानों को पारित कराने का प्रश्न भी एक अन्य शक्तिशाली कारण है, जिसके आधार पर कि बहुत हद तक यह प्रश्न निश्चित होगा कि विधान-मंडल को कितनी बार आहूत किया जाये।

अत: सदन से मेरा निवेदन है कि हमने जो उपबंध कर दिया है, वह न्यूनतम के रूप में पर्याप्त है। जहां तक अधिकतम का संबंध है, मामला अनिश्चित छोड़ दिया गया है तथा मैंने जो कारण बताये हैं, उनसे ऐसी कोई आशंका नहीं है कि कार्यपालिका इस खंड विशेष द्वारा लागू न्यूनतम कर्त्तव्यों को करके ही संतुष्ट हो जाये।

मैं प्रो. शाह के संशोधन (संख्या 1477) को लेता हूं। प्रो. शाह इस संशोधन विशेष द्वारा खंड 67 (2) (क) में से (either House) इन शब्दों में उनके तर्क को समझ नहीं सका। उनकी यह धारणा प्रतीत होती थी—यदि मैं गलत हूं तो वे ठीक कर दें—कि क्योंकि द्वितीय सभा विघटनशील नहीं है, अत: राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उसे कार्य करने के लिये आहूत करे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों स्थितियों में बहुत अन्तर है। उस सदन को किसी निश्चित कालावधि के पश्चात् घटित करना चाहे आवश्यक न हो, जैसे कि लोक सभा को पांच वर्ष पश्चात् विघटित करना होता है; किंतु उस सदन को कार्य करने के लिये बुलाने का काम तो फिर भी रहता ही है। सदन यहां दिल्ली में प्रतिदिन चौबीस घंटे तथा प्रतिवर्ष 12 मास तो नहीं बैठा रहेगा। उसे आहूत करना पड़ेगा और सदस्यगण आवाहन करने पर उपस्थित होंगे। अत: मुझे यह दिखता है कि द्वितीय सदन को भी बुलाने की शक्ति के लिये भी वैसा उपबंध होना अपेक्षित है, जैसे कि प्रथम सदन के विषय में उपबंध किया गया है।

अब मैं प्रो. शाह के दो अन्य संशोधनों को लेता हूं (संख्या 1473 तथा 1478)। जैसी शब्दावलि उन्होंने संशोधनों की रखी है, उसके कारण वे कुछ उलझे हुए हैं। संशोधनों का सार यह है कि प्रो. शाह यह समझते प्रतीत होते हैं कि शायद राष्ट्रपति इस अनुच्छेद के अनुसार साधारण काल में संसद को न बुलाये या कि आपात होने पर भी विधान-मंडल को आहूत करें ही नहीं। अत: वे कहते हैं कि जब राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्य में असफल हों, तब विधान-मंडल को आहूत करने की शक्ति प्रथम सभा के अध्यक्ष में अथवा द्वितीय सभा के सभापति या उप सभापति में निहित कर देनी चाहिये। यदि मैं ठीक समझा हूं तो प्रो. शाह की यही युक्ति है। मुझे प्रतीत होता है कि यहां भी प्रो. शाह सारी स्थिति को गलत समझे हैं। सर्व प्रथम तो मैं यह नहीं समझता कि राष्ट्रापति अपना ऐसा कर्त्तव्य करने में क्यों असफल रहेंगे, जो विधि द्वारा उनके लिये नियत किया गया है।

यदि प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को यह सुझाव दें कि विधान-मंडल बुलाया जाए और राष्ट्रपति, अकारण, क्रीड़ावश या लम्पटतावश उसे आहूत करने से इन्कार कर दें तो मेरे ख्याल में हमारे पास हमारे अपने संविधान में इसका उपाय है कि ऐसे राष्ट्रपति को पदच्युत कर दिया जाये। हमें उस पर महाभियोग चलाने का अधिकार है, क्योंकि उसके लिये जो कर्त्तव्य नियत किये गये हैं, उन्हें करने से ना करना निस्संदेह संविधान का उल्लंघन है। अतः उस खंड विशेष में पर्याप्त उपचार हैं।

किन्तु यदि हम प्रो. के.टी. शाह के सुझाव को स्वीकार कर लें तो एक और कठिनाई उत्पन्न होती है। मान लीजिये, उदाहरण के लिये कि राष्ट्रपति उचित कारण से विधान-मंडल को नहीं बुलाता और अध्यक्ष तथा सभापति विधान-मंडल को बुला लेते हैं। फिर क्या होगा? यदि राष्ट्रपति विधान-मंडल को नहीं बुलाता तो इसका यह अर्थ हुआ कि कार्यपालिका सरकार के पास सदन के समक्ष रखने के लिये कोई कार्य नहीं है। क्योंकि वही एक आधार है, जिस पर राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर सभा का सत्र बुलाये। अब, अध्यक्ष सभा के लिये कार्य तो पैदा नहीं कर सकता और न सभापति ही ऐसा कर सकता है। कार्य तो कार्यपालिका को ही देना है, अर्थात् प्रधानमंत्री को ही देना है जो राष्ट्रपति को मंत्रणा देगा कि विधान-मंडल को आहूत किया जाये। अतः अध्यक्ष या सभापति को केवल यह शक्ति दे देना कि वे विधान-मंडल को बुला सके और उस सभा के लिये कार्य पेश करने का उपबंध न करना तो मेरे विचार में एक व्यर्थ बात होगी और इसलिये उस संशोधन को स्वीकार करने से कोई अभिप्राय सिद्ध नहीं होगा।

प्रो. के.टी. शाह के अन्तिम संशोधन संख्या 1482 का उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति को सदन के विघटन की अनुमति तब तक नहीं देनी चाहिये, जब तक कि प्रधानमंत्री विघटन के लिये लेख द्वारा अपने कारण न बताये। खैर, मैं नहीं जानता कि इसमें क्या अन्तर हो सकता है कि प्रधानमंत्री जाकर राष्ट्रपति से कहे कि उनके विचार में सदन का विघटन होना चाहिये या प्रधानमंत्री पत्र लिखकर कहे कि सदन विघटित किया जाना चाहिये। प्रो. के.टी. शाह ने अपनी वक्तृता में यह नहीं बताया कि इस लिखित पत्र से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, जो वे विघटन से पूर्व प्रधानमंत्री से लिखवाना चाहते हैं। अतएव मैं कोई टिप्पणी करने में असमर्थ हूं। यदि प्रो. के.टी. शाह का यह उद्देश्य है कि प्रधानमंत्री को विघटन के लिये स्वेच्छाचारिता से नहीं करना चाहिये, तो मेरे विचार में यदि विघटन के विषय में परम्परा पर चला जाये तो वह उद्देश्य पूरा हो जायेगा। जहां ते मैं समझ सका हूं, बादशाह को संसद के विघटन करने का अधिकार है। वह साधारणतः प्रधानमंत्री की मंत्रणा पर ही उसका विघटन करता है, किंतु एक समय पर, निस्संदेह उस समय पर जबकि मकोले ने इंगलिस्तान का इतिहास लिखा था, जिसमें कि उसने संसद के विघटन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

के अधिकार के सिद्धांत का प्रवर्तन किया था, तब स्थिति यह थी: सब राजनीतिज्ञ यह मानते थे कि उस समय की परम्परा के अनुसार बादशाह प्रधानमंत्री की मंत्रणा को स्वीकार करने के लिये अवश्यमेव बाध्य नहीं था, यदि प्रधानमंत्री संसद का विघटन चाहता हो। यदि बादशाह चाहता तो वह विरोधी दल के नेता से पूछ सकता था कि क्या वह आकर सरकार की स्थापना करने के लिये उद्यत था, जिससे कि उस प्रधानमंत्री को पदच्युत कर दिया जाये जो सदन का विघटन चाहते थे और विरोधी दल का नेता सरकारी कार्य को संभाल ले और विघटन किये बिना उसी संसद से काम चलाये। बादशाह को यह भी अधिकार था कि वह सदन से कोई और मंत्री को ढूंढ निकाले, जो सदन का विघटन किये बिना प्रशासन चलाने के उत्तरदायित्व को वहन करने के लिये उद्यत हो। यदि बादशाह विरोधी दल के नेता को या किसी अन्य सदस्य को शासन का उत्तरदायित्व संभालने तथा प्रशासन चलाने के लिये राजी करने में असफल होता तो वह सदन का विघटन करने के लिये बाध्य था। इसी प्रकार भारत-संघ का राष्ट्रपति भी सदन की भावनाओं का आभास कर लेगा कि क्या सदन इस बात से सहमत है कि उसका विघटन कर दिया जाये या सदन यह मानता है कि बिना विघटन के ही किसी अन्य नेता द्वारा काम चलाया जाये। यदि वह देखता है कि भावना ऐसी है कि विघटन के सिवाय कोई और विकल्प नहीं है, तो संवैधानिक राष्ट्रपति के नाते वह निस्संदेह सदन का विघटन करने के विषय में प्रधानमंत्री की मंत्रणा को स्वीकार कर लेगा। अतएव मेरा यह ख्याल है कि लिखित रूप में एक पत्र पर हठ करना, जिसमें वे कारण लिखे हुए हो कि प्रधानमंत्री सदन का विघटन क्यों चाहता है, व्यर्थ दिखाई देता है और उसका मूल्य उस कागज के बराबर भी नहीं है जिस पर वह लिखा गया है। राष्ट्रपति के लिये सदन की भावनाओं को जानने के तथा यह मालूम करने के और भी उपाय हैं कि प्रधानमंत्री सदन के विघटन की मांग किसी सच्चे कारणों से कर रहा है अथवा केवल दल संबंधी प्रयोजनों से कर रहा है। मेरे विचार में हम राष्ट्रपति पर भरोसा कर सकते हैं कि वह दलों के नेताओं और समूचे सदन के मध्य ठीक ही निर्णय करेंगे। अत: मैं नहीं समझता कि यह संशोधन स्वीकार किया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों का एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice at least in every year, and six' इन शब्दों के स्थान पर 'once at least in every year at the beginning thereof, and more than three' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत कर दिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) में 'twice' शब्द पर के स्थान 'thrice' शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (1) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'किंतु संसद या उसका कोई सदन एक बार बुलाये जाने पर तथा अधिवेशन आरम्भ होने पर वर्ष भर इसी प्रकार चलता रहेगा और प्रत्येक बैठक समस्त संसदीय वर्ष के लिये निरन्तर अधिवेशन में समझी जायेगी चाहे छुट्टियों, स्थगन अथवा सत्रावसान के कारण बाधा पड़े।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (क) में 'the Houses or either House of' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (क) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'परन्तु यदि किसी समय राष्ट्रपति इस संविधान में दिये गये उपबंध के अनुसार लोक सभा को अथवा लोक सभा के विघटन के पश्चात् संसद के किसी सदन को तीन मास से अधिक समय तक अथवा लोक सभा के जीवन काल में 90 दिन से अधिक समय तक नहीं बुलाता, तो लोक सभा का अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् का सभापति क्रमश: अपने-अपने सदनों को बुला सकता है जो उस अवस्था में वैध रूपेण समझे जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये अथवा आने वाले किसी कार्य को करने के अधिकारी समझे जायेंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''अनुच्छेद 69 के उपखंड (ग) के अन्त में विराम के स्थान पर एक अर्धविराम रख दिया जाये और निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'यदि ऐसा विघटन धारा 68 (2) में उपबन्धित सामान्य अवधि के पूर्व होने से पहले हो, तो प्रधानमंत्री के परामर्श पर ऐसा किया जायेगा, परन्तु प्रधानमंत्री द्वारा ऐसे विघटन के लिये दिये गये कारण लिखित रूप में अभिलेखार्थ रखे जायेंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के पश्चात्, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ हो या अनिच्छुक हो और प्रधानमंत्री की सम्मति में राष्ट्रीय आयात हो, तो वह अध्यक्ष अथवा राज्य-परिषद् के सभापति से प्रार्थना कर सकता है कि संसद के दोनों सदनों का आह्वान किया जाये और उसके समक्ष ऐसा कार्य रखा जाये जो राष्ट्रीय आयात के लिये अपेक्षित हो। इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन में जो कार्य किया जाये, वह वैधरूपेण किया गया माना जायेगा और उसी प्रकार बाध्यकारी होगा जैसे कि सामान्य रूप से पारित किया हुआ संसद का कोई अधिनियम, प्रस्ताव या आदेश हो:

परन्तु यह भी बात है यदि किसी समय राष्ट्रपति लोक सभा के सत्रावसान या विघटन के पश्चात् तीन मास या 90 दिन से अधिक समय तक संसद का आह्वान करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो और प्रधानमंत्री भी उक्त प्रार्थना करने में असमर्थ या अनिच्छुक हो तो संसद के किसी सदन का सभापति ऐसा कर सकता है और इस प्रकार एकत्र आहूत संसद के सदन वैधरूपेण आहूत माने जायेंगे और अपने समक्ष रखे गये कार्य को निपटाने के अधिकारी होंगे।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 के खंड (2) के उपखंड (ख) में 'the Houses' इन शब्दों के पश्चात् 'over a period not exceeding three months' ये शब्द जोड़ दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** सारे संशोधन रद्द कर दिये गये हैं।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 69 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 69 संविधान में जोड़ दिया गया।

नया अनुच्छेद 69-ए

***अध्यक्ष:** कई सदस्यों ने एक नए अनुच्छेद की सूचना दी है। श्री रामलिंगम् चेटियर का संशोधन संख्या 1484।

***श्री टी.ए. रामलिंगम चेटियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं इसे किसी अधिक सुविधाजनक अवसर पर पेश करूंगा। इस समय इसे पेश करना आवश्यक नहीं है।

अनुच्छेद 70

***अध्यक्ष:** तब हम अनुच्छेद 70 को लेते हैं। इसमें श्री कामत के दो संशोधन संख्या 1485 तथा 1486 हैं, जो रचना संबंधी हैं।

***श्री एच.वी. कामत:** वे रचना-संबंधी नहीं हैं। किन्तु यदि आपका यह निर्णय है कि वे ऐसे हैं तो मैं उन्हें पेश करने के लिये हठ नहीं करूंगा।

***अध्यक्ष:** कोई अन्य संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 70 संविधान का भाग हो।''

अनुच्छेद 70 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 71

***अध्यक्ष:** एक संशोधन संख्या 1487 है जिसकी सूचना प्राप्त हुई है। यह नकारात्मक है अत: मैं इसके पेश करने की अनुमति नहीं देता।

प्रो. शाह का संशोधन संख्या 1488। यह संशोधन अनुच्छेद 70 में आ जाता है, जो हम पहले ही स्वीकार कर चुके हैं।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान।

(संशोधन संख्या 1489 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रो. शाह का संशोधन सं. 1490।

***प्रो. के.टी. शाहः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 71 के खंड (1) में 'and inform Parliament of the cause of its summons' इन शब्दों के स्थान पर 'on the general state of the Union, including financial proposals and other particular issues of policy be deems suitable for such address' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा:

> ''प्रत्येक सत्र के आरम्भ पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को, जो एक साथ समवेत होंगे, संघ की साधारण स्थिति के विषय में सम्बोधित करेगा, जिसमें आर्थिक सुझाव तथा अन्य विशेष बातें समाविष्ट होंगी जिन्हें वह ऐसे सम्बोधन के लिये उपयुक्त समझे।''

यहां जो शब्दावलि है उसमें तथा मेरे सुझाये हुए तरीके अन्तर है। मैं चाहता हूं कि राष्ट्रपति का संभाषण मुख्यत: नीति के साधारण प्रश्नों अथवा देश के भविष्य के विषय में हो तथा केवल आह्वान के विशिष्ट कारणों के ही संबंध में न हो। ब्रिटिश संसद में यह रीति है कि संसद के उद्घाटन पर बादशाह सिंहासन से संभाषण देता है। उसमें, साधारणत: सब प्रश्नों का उल्लेख होता है। सरकार विधान के लिये जो मुख्य प्रस्ताव लाना चाहती है, उनका उल्लेख होता है तथा जो मांगें तथा व्यय होने की संभावना हो उनका भी उल्लेख होता है। अब, यदि आप केवल 'आह्वान के कारण' ही कहें, तो इसका अर्थ होगा उस दिन की संघ आवश्यकता; चूंकि यदि राष्ट्रपति को मामलों की साधारण स्थिति का सिंहावलोकन करने की स्वतंत्रता दे दी जाये तथा प्रस्तावित विधानों और सदन में रखी जाने वाली नीति का मोटे से शब्दों में संकेत करने की भी स्वतंत्रता दे दी जाये, तो मेरे विचार में बहुत ज्यादा ढील हो जायेगी। देश की स्थिति के सरकारी सिंहावलोकन से जनता को यह समझाने में बहुत हद तक सहायता मिलेगी कि उनकी सरकार किस प्रकार कार्य कर रही है और यह भी कि समय-समय पर उनकी सरकार क्या-क्या कामों को हाथ में लेती है और किस हद तक ये काम पूरे किये जा रहे हैं।

मेरे विचार में राज्य का दलहीन प्रमुख होने की हैसियत से, जो कि गणराज्य का प्रतिनिधित्व करता है, राष्ट्रपति को व्यापक सिंहावलोकन करना चाहिये और केवल उन्हीं कारणों तक अपना भाषण सीमित नहीं रखना चाहिये जिनसे कि सदन बुलाया गया हो और इसीलिये यह संशोधन रख रहा हूं। मैं इसे सदन के समक्ष पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** अन्य तीन संशोधन संख्या 1491, 1492 तथा 1493 रचना-संबंधी हैं और उनकी अनुमति नहीं दी जाती। अनुच्छेद तथा उस पर पेश किये गये संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, आप ने निर्णय किया है कि संशोधन संख्या 1487 पेश नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इस खंड का पूर्णत: निराकरण करता है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि मुझे इस खंड की आवश्यकता के विषय में ही विश्वास नहीं हो पाता और प्रो. के.टी. शाह के संशोधन के विषय में तो और भी कम विश्वास होता है। श्रीमान्, हम एक खंड पहले पारित कर ही चुके हैं जिससे राष्ट्रपति को यह अधिकार मिल जाता है कि वह संसद के किसी सदन को संबोधित कर सकेगा। अब इस खंड द्वारा हम राष्ट्रपति के लिये यह अनिवार्य बना रहे हैं कि प्रत्येक सत्र के आरम्भ पर वह संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करेगा, और प्रयोजन भी बता दिया गया है। संसद को बार-बार बुलाने की आवश्यकता पर अभी बहुत लम्बा वाद-विवाद हुआ है और कुछ माननीय सदस्य इस बात पर जोर दे रहे थे कि यदि संसद सारे वर्ष ही समवेत रहे और केवल कुछ छट्टियों में ही बन्द रहे तो अभीष्ट होगा। श्रीमान्, मेरे विचार में कहीं भी, ब्रिटिश संविधान तक में, बादशाह के लिये यह अपेक्षित नहीं है कि जितनी बार भी संसद समवेत हो, वह अपना भाषण दे, अत: मैं प्रयत्न करके भी समझ नहीं पा रहा हूं कि हमारे राष्ट्रपति को बाध्य करने के लिये जानबूझकर ऐसा उपबंध क्यों रखा जाये, जिसकी कि स्थिति तथा पद इंगलिस्तान के बादशाह से अधिक मिलता-जुलता है। वह भारत का सांविधानिक प्रमुख होगा और मुझे यह जंचता नहीं कि उसे बाध्य किया जाये कि वह भाषण दे ही और यह भी बतायें कि उसने किन कारणों से संसद को बुलाया है। श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि सदन द्वारा इस बाध्यकारी खंड के पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है और न इससे कोई प्रयोजन सिद्ध ही होगा। हां, प्रो. के.टी. शाह का संशोधन अत्यधिक आगे बढ़ा हुआ है। वे तो यह भी चाहते हैं कि इस खंड में वे विषय भी लिखे हुए होने चाहियें जिन पर उसे भाषण देना है। इससे तो राष्ट्रपति के स्वविवेक पर बहुत अधिक बंधन हो जायेगा। संविधान में ऐसा उपबंध रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रपति के भाषण पर वाद-विवाद के लिये अनिवार्यत: समय देना ही पड़ेगा। श्रीमान्, मेरे विचार में हमने जितना उपबंध कर दिया है वहीं काफी से ज्यादा है और उसे बाध्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वह प्रत्येक सत्र में भाषण दे और एक विशेष विषय-सूची पर ही भाषण दे। मेरे विचार में इस खंड की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि डॉ. अम्बेडकर इसे हटा देने के लिये राजी हो सकें, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** प्रो. के.टी. शाह केवल यही चाहते हैं कि जो उन्हीं के शब्दों में विस्तार से कहा गया है पर मेरे विचार में 'आह्वान के कारण' इस पद में यह बात आ जाती है। मेरे विचार में यह पद इतना विस्तृत है कि इसमें वे सब बातें आ जाती हैं, जो प्रो. के.टी. शाह चाहते हैं, मैं यह भी कह सकता हूं कि यही पदावलि अर्थात् 'संसद में भाषण देगा तथा उसे आह्वान के कारणों से अवगत करायेगा'

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

यही पदावलि हम देखते हैं कि ब्रिटिश संसद में प्रयुक्त होती है। यदि प्रो. शाह हाउस आफ कामन्स के नियमों के विषय में केम्पियन की पुस्तक पढ़ें तो वे देखेंगे कि यही पदावलि वहां प्रयोग की गई है और उपयुक्त पदावलि के लिये लम्बी और बड़ी खोज के पश्चात् हमें केम्पियन के इन शब्दों को प्राप्त करने का सौभाग्य मिला और मेरे विचार में यह अच्छा पद है और इसे रख लेना चाहिये, क्योंकि इसमें वे सब बातें आ जाती हैं जो प्रो. शाह चाहते हैं। प्रो. के.टी. शाह ने कहा है कि ऐसा ही उपबंध होना चाहिये कि राष्ट्रपति संदेश भी भेज सकें तथा सदन में अन्यथा सम्भाषण भी कर सकें। मेरे विचार में अनुच्छेद 70 में, जो हमने अभी पारित किया है, एक सुनिश्चित उपबंध है, जो राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह संसद के दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकते हैं, संदेश भी भेज सकते हैं और वे संदेश किसी विधेयक विशेष के संबंध में अथवा संसद में पेश किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में हो सकते हैं। मेरे ख्याल में अनुच्छेद 70 में जो कुछ व्यवस्था है उससे अधिक और कुछ नहीं चाहिये। जहां तक सदन को संबोधित करने के विषय में राष्ट्रपति के स्वतंत्र अधिकार का सम्बन्ध है और उसके लिये अनुच्छेद 70 में पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। अतएव मैं समझता हूं कि इस संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 71 के खंड (1) में 'and inform Parliament of the cause of its summons' इन शब्दों के स्थान पर 'on the general state of the Union, including Financial proposals and other particular issues of policy he deems suitable for such address' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 71 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 71 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 72

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 72 संविधान का भाग हो।''

(संशोधन संख्या 1494 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 72 में India' शब्द के पश्चात् 'if elected member of Parliament' ये शब्द रख दिये जायें।

और संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार बन जायेगा।

> ''प्रत्येक मंत्री और भारत के महान्यायवादी को, यदि वह संसद का सदस्य चुना जाये तो, यह अधिकार होगा कि वह किसी सदन में, सदनों की किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में जिसका कि वह सदस्य मनोनीत किया जाये बोल सके और उनकी कार्यवाही में अन्यथा भाग ले सके, किंतु इस अनुच्छेद के आधार पर उसे मत देने का अधिकार न होगा।''

श्रीमान्, मेरा संशोधन केवल उन्हीं मंत्रियों को यह अधिकार देना चाहता है, जो संसद के सदस्य चुने जायें। मेरे विचार में यह संविधान जिस सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होता है, उसी सिद्धांत में यह भी बात है कि मंत्रिगण विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होने चाहियें। यह उत्तरदायित्व तभी पूरा किया जा सकता है जबकि वे संसद के सदस्यों की हैसियत से और संसद में बैठकर अपने आप उत्तर दें।

जो संसद के सदस्य नहीं हैं और फिर भी जिन्हें संसद के किसी सदन में अथवा उसकी किसी समिति में, जिसके कि वे सदस्य मनोनीत किये जायें, बोलने का अथवा कार्यवाही में भाग लेने का जो अधिकार दिया गया है वह एक विसंगत दिखाई देता है, क्योंकि उसे बोलने का अधिकार देने के पश्चात् आप उसे मत देने का अधिकार नहीं देते। साथ ही यह भी सत्य है कि जो व्यक्ति किसी निकाय का सदस्य न हो, उसे उस निकाय में मत देने का कोई अधिकार नहीं मिल सकता, आशय तो यह है कि मंत्री या महान्यायवादी के पास ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तथा युक्तियां हैं जिनसे सदन के निश्चय पर प्रभाव पड़ सकता है, तो यह अपेक्षित है कि ऐसे व्यक्ति को उस निकाय में अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिये, जिसका कि वह सदस्य है और जहां वह बोल रहा है। किंतु यदि वह उस निकाय का सदस्य न हो, तो स्थिति बहुत विषम बन जाती है, क्योंकि वहां उपस्थित लोगों को यह ज्ञात होगा कि उसे मत देने का अधिकार नहीं है, अतएव सदन में उनके समान स्थान प्राप्त नहीं है।

मेरे मतानुसार, मंत्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धांत के अनुसार यह आवश्यक है कि मुख्यमंत्री विधान-मंडल के सदस्य भी होने ही चाहियें और यदि वे सदस्य हों तो उस सदन में जिसके कि वे सदस्य हैं उन्हें साधिकार बोलने का तथा मत देने का अधिकार होगा ही। यदि आप यह विशेषाधिकार 'किसी सदन' में मंत्रियों को देना चाहते हैं, चाहे वह उस 'किसी सदन' का सदस्य न भी हो, तो मेरे विचार में उसकी भाषा

[प्रो. के.टी. शाह]

को कुछ भिन्न प्रकार से रखना अच्छा रहेगा। मेरा सुझाव यह है कि यदि आप किसी सदन के निर्वाचित सदस्य हों, तो आपको दूसरे सदन में बोलने का भी अधिकार दिया जा सकता है जिससे कि आप केवल अपने दृष्टिकोण को प्रकट कर सकें तथा किसी समस्या विशेष को समझा सकें, जिस पर कि उस सदन में वाद-विवाद हो रहा है जिसके कि आप सदस्य नहीं हैं। किन्तु मैं जैसे समझता हूं, इस अनुच्छेद में यह स्थिति है: कोई मंत्री जिसे कार्यवाही में भाग लेने का तथा बोलने का अधिकार है अथवा किसी समिति का सदस्य बनने का अधिकार है और जिसे बोलने का अधिकार किंतु मतदान का अधिकार नहीं है, वह शायद अपने उत्तरदायित्व की भावना को बहुत कम अनुभव करे। यह संविधान में एक विसंगति तो है ही कि एक मंत्री को बोलने दिया जाये और मत नहीं देने दिया जाये, इसके अतिरिक्त इससे मंत्रियों के उत्तरदायित्व की भावना का भी, जो परमावश्यक है, न्यूनन हो जायेगा। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि बोलने तथा कार्यवाही में भाग लेने अथवा समिति के सदस्य बनने के अधिकार के साथ-साथ मतदान का भी अधिकार होना चाहिये यदि वह व्यक्ति सदन का निर्वाचित सदस्य हो। मैं निश्चित रूप से 'निर्वाचित सदस्य' ही कहता हूं, क्योंकि वे विशेषज्ञ उदाहरणार्थ, जो कि उस अनुच्छेद के अधीन, जो कि सदन में पहले स्वीकार किया है, राष्ट्रपति द्वारा किसी विधेयक या अन्य विषय पर मंत्रणा देने या सहायता देने के विशेष अभिप्राय से, मनोनीत किये जाते हैं, वे स्वभावत: निर्वाचित न होने के कारण जनता के प्रतिनिधि नहीं होंगे; अत: यह उपयुक्त होगा कि उन्हें सदन में पेश मामलों पर अपनी विशिष्ट राय देने तथा जिस कार्य के लिये वे मनोनीत किये गये हैं, उन पर मंत्रणा देने तक ही सीमित रखा जाये तथा उस प्रश्न पर वे मत न दें। अत: मैं समझ सकता हूं कि ऐसे व्यक्तियों को मत देने के अधिकार से वंचित कर दिया जाये। किंतु ऐसे संविधान में, जो कि मंत्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर आधारित है, मेरे विचार में मंत्रियों को केवल किसी सदन की कार्यवाही में ही भाग लेने का अधिकार नहीं होना चाहिये, बल्कि वे उस सदन के सदस्य होने चाहियें तथा उन्हें मतदान का भी अधिकार होना चाहिये। तदनुसार मैं इस संशोधन का सदन में समर्थन करता हूं।

(संशोधन संख्या 1496 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1497 रचना-संबंधी है।

अनुच्छेद और संशोधन पर अब विचार किया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मुझे खेद है कि मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन का आशय नहीं समझ सका हूं, अत: मैं इसका विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

मेरे ख्याल में यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में सर्वथा स्पष्ट है। इस अनुच्छेद से यह अर्थ निकलता है कि किसी मंत्री या महान्यायवादी को वाद-विवाद में भाग लेने का

अधिकार होगा, किन्तु इस अनुच्छेद के आधार पर उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा। मेरे मित्र प्रो. शाह एक उपबंध जोड़ना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को, यदि वह संसद का निर्वाचित सदस्य हो तो, बोलने आदि का अधिकार होगा, किंतु इस अनुच्छेद के आधार पर मत देने का अधिकार नहीं होगा। क्या वे सदन को यह कहना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को संसद का सदस्य निर्वाचित हो जाने के पश्चात् भी मत देने का अधिकार न होगा? इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि वे ऐसी व्यवस्था करना चाहते हैं कि मंत्री या महान्यायवादी को संसद का निर्वाचित सदस्य बनने के पश्चात् सदन में बोलने अथवा उसको कार्यवाही में अन्यथा भाग लेने का अधिकार हो जायेगा, पर मतदान का अधिकार नहीं होगा। तो फिर मैं अपने विद्वान मित्र प्रो. के.टी. शाह से पूछता हूं कि मत देने का किसे अधिकार है? यदि आप संसद के निर्वाचित सदस्यों को भी संसद में अपना मत देने से रोकना चाहते हैं, तो मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि वे मतदान का अधिकार किसे देना चाहते हैं। क्या वे यह अधिकार संसद के उन सदस्यों को देना चाहते हैं जो कि मनोनीत हों, जो निर्वाचित न हों? मैं तो वास्तव में यह समझने में असमर्थ हूं कि उन्होंने जो संशोधन पेश किया है, उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है। वास्तव में इस अनुच्छेद में जहां तक मैं समझ पाया हूं, दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों का उपबंध है। एक तो वे मंत्री जिनका चुनाव अभी तक नहीं हो पाया है और महान्यायवादी जो कि मनोनीत किया जा सकता है। क्योंकि अनुच्छेद 61(5) के अधीन एक मंत्री सदन का निर्वाचित सदस्य बने बिना छह मास तक अपना पद धारण कर सकता है तथा अनुच्छेद 63 के अंतर्गत महान्यायवादी सदन का निर्वाचित सदस्य होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को महान्यायवादी नियुक्त कर सकता है, जो कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह हो। हमें दोनों प्रकार की आकस्मिकता के लिये व्यवस्था करनी है। मेरे विचार में यह अनुच्छेद यही करता है। अतएव मेरे ख्याल से यह स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद 72 संसद के केवल मनोनीत सदस्यों को अपना मत अनावश्यक रूप से प्रदान करने से रोकता है और सदन के किसी निर्वाचित सदस्य से वह अधिकार नहीं छीनता, चाहे वह मंत्री हो या अन्यथा, इसलिये मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि प्रो. शाह ने अपना संशोधन किस अभिप्राय से पेश किया है और इसलिये मैं सदन से अपील करता हूं कि वह उनके संशोधन को अस्वीकार कर दे।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** श्रीमान्, मेरे पास केवल पांच ही मिनट हैं और मैं अपनी वक्तृता को उन पांच मिनटों में ही समाप्त करना चाहता हूं।

अब प्रो. शाह ने दो संशोधन पेश किये हैं। उनका प्रथम संशोधन है कि 'Every Minister and' इन शब्दों को हटा दिया जाये। अतः वे नहीं चाहते कि कोई मंत्री वाद-विवाद में भाग ले। इसका परिणाम यह होगा। मान लीजिये किसी प्रांत में अथवा भारत संघ में.....

***अध्यक्ष:** वह संशोधन पेश नहीं किया गया। आप संशोधन संख्या 1494 की चर्चा कर रहे हैं। केवल संशोधन संख्या 1495 ही पेश किया गया है।

***मि. तजम्मुल हुसैन:** मुझे खेद है, मेरे से गलती हो गई। अब मैं संशोधन संख्या 149 को ले रहा हूं, जो प्रो. शाह ने पेश किया है, जिसमें वे कहते हैं कि 'Attorney-General of India' इन शब्दों के आगे 'if elected member of Parliament' ये शब्द जोड़ दिये जायें। उनका अर्थ यह है कि भारत का महान्यायवादी संसद का निर्वाचित सदस्य होना चाहिये। इस पर मुझे यह आपत्ति है। मान लीजिये कि वकीलों में से कोई अर्ह व्यक्ति निर्वाचित नहीं होता, तो किसी निर्वाचित व्यक्ति को महान्यायवादी कैसे बना सकते हैं? आप यह प्रत्याभूति नहीं दे सकते कि निर्वाचित सदस्यों में एक व्यक्ति वकीलों में से हो और अर्ह ही मेरे मित्र श्री कामत अनुच्छेद 63 पर पहले बोल ही चुके हैं जिसमें यह उपबंध है कि राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में से एक को भारत का महान्यायवादी नियुक्त कर सकते हैं। अतएव मेरा निवेदन है कि प्रो. शाह के इस संशोधन में कोई अर्थ नहीं है कि महान्यायवादी एक निर्वाचित सदस्य होना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने यह संशोधन क्यों पेश किये हैं। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि प्रो. शाह अनुच्छेद 72 का आधारभूत अभिप्राय वस्तुत: समझ पाये हैं। इस मामले का पूर्णत: स्पष्ट करने के लिये मैं कुछ साधारण मूल सिद्धांतों का वर्णन पहले करना चाहता हूं। प्रत्येक सदन स्वायत्तधारी सदन होता है; अर्थात् वह ऐसे किसी व्यक्ति को, जो उस सदन का सदस्य न हो, अपनी कार्यवाही में भाग लेने या कार्यवाही के अन्त में मतदान करने की अनुमति नहीं देगा। केवल वही कार्यवाही में भाग ले सकते हैं या मतदान कर सकते हैं जो कि सदन के सदस्य हों। अब हमारे यहां एक विसंगतिपूर्ण स्थिति है और वह यह है। जहां तक केन्द्र का संबंध है हमारे यहां दो सदन हैं, प्रथम सदन और द्वितीय सदन। यह पूर्णतया सम्भव है कि एक व्यक्ति जो मंत्री नियुक्त है प्रथम सदन का सदस्य होगा। यदि वह किसी विधेयक विशेष को भार-वाहक हो और संविधान के अनुसार विधेयक के लिये दोनों सदनों की स्वीकृति की आवश्यकता है, स्पष्टत: विधेयक को केवल प्रथम सभा में ही पारित नहीं करवाना है, द्वितीय सदन में भी पारित करवाना होगा। अतएव यदि किसी विधेयक का भार-साधक मंत्री प्रथम सदन का सदस्य हो, तो साधारणत: वह इस स्थिति में न होगा कि द्वितीय सदन में उपस्थित हो सके तथा उस विधेयक को पारित करा सके, जब तक कि कोई विशेष उपबंध न किया जाये। अनुच्छेद 72 इसलिये बनाया जा रहा है कि जिससे कोई व्यक्ति जो प्रथम सदन का सदस्य हो तथा किसी विधेयक का भार-साधक मंत्री हो, वह द्वितीय सदन में जा सके, उसे संबोधित कर सके तथा उसकी कार्यवाही

में भाग ले सके। अनुच्छेद 72 इस व्यापक नियम में वस्तुतः अपवादस्वरूप है कि कोई व्यक्ति किसी सदन की कार्यवाही में तब तक भाग नहीं ले सकता। जब तक कि वह व्यक्ति उस सदन का सदस्य न हो। यह आवश्यक है कि जो मंत्री द्वितीय सदन का सदस्य हो उसे यह अधिकार होना चाहिये कि वह प्रथम सभा में जा सके तथा उसे संबोधित कर सके, जिससे कि वह विधेयक पारित हो जाये। इसी प्रकार यदि वह प्रथम सदन का सदस्य हो तो उसे अधिकार होना चाहिये कि वह द्वितीय सदन में जाकर, भाषण देकर, उस विधेयक को पारित करा ले। इसी तरह की बात के लिये ही अनुच्छेद 72 का निर्माण किया जा रहा है। यही बात महान्यायवादी के विषय में है। महान्यायवादी प्रथम सदन का सदस्य हो सकता है। उसे शायद द्वितीय सदन में जाने की आवश्यकता पड़ जाये, किन्तु प्रथम सभा का सदस्य होने के कारण उसे शायद द्वितीय सदन में उपस्थित होने का वैध अधिकार न हो। अतएव यह उपबंध किया गया है। इसी प्रकार यदि वह द्वितीय सदन का सदस्य हो तो उसे प्रथम सदन में जाने तथा भाषण देने का वैध अधिकार शायद न हो। इसी उद्देश्य से यह बनाया जा रहा है। हमने उसके अधिकार को कार्यवाही में भाग लेने तक ही सीमित कर दिया है। हम एतद्द्वारा किसी मंत्री को जो दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग ले रहा हो, मतदान का अधिकार नहीं देते। क्योंकि हम यह नहीं समझते कि किसी विधेयक विशेष के संबंध में कार्यवाही चलाने के लिये मतदान की शक्ति अपेक्षित है। मेरे विचार में मेरे मित्र ने भी कहा था कि 'Minister' शब्द को हटा दिया जाये और 'elected person' ये शब्द रख दिये जायें; किन्तु उससे भी कठिनाई हो जायेगी क्योंकि हमने अपने संविधान के किसी भाग में कहा है कि कोई ऐसा व्यक्ति जो कि सदन का निर्वाचित सदस्य न हो, कुछ खास समय के लिये मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को योग्य बनाने के लिये ही 'मंत्री' शब्द रखना अपेक्षित है, 'व्यक्ति' शब्द रखना नहीं। यही कारण है कि इस संदर्भ में 'मंत्री' शब्द इतना आवश्यक क्यों है। मैं संशोधन का विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 72 में 'India' शब्द के आगे 'if elected member of Parliament' ये शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मैं अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 72 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 72 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** सदन कल प्रात: के आठ बजे तक के लिये स्थगित रहेगा।

तत्पश्चात् सदन बृहस्पतिवार, 19 मई, 1949 को प्रात: के 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गया।